INTERNATIONAL MAGAZINE
RNI NO. 68884/96

Postal Regd. No. CHD/0082/2018-20

Date of Publishing : 22/09/2019
Page No. from 1 to 60
Date of posting
Last Date of Every Month
Posted by MBU

30/-

ब्रहमु दीसै ब्रहमु सुणीऐ एकु एकु वखाणीऐ ।।
आतम पसारा करण हारा प्रभ बिनां नहीं जाणीऐ ।।

आत्म मार्ग

October 2019

सभ सिखनि को हुकम है गुरु मानिओ ग्रन्थ ।।

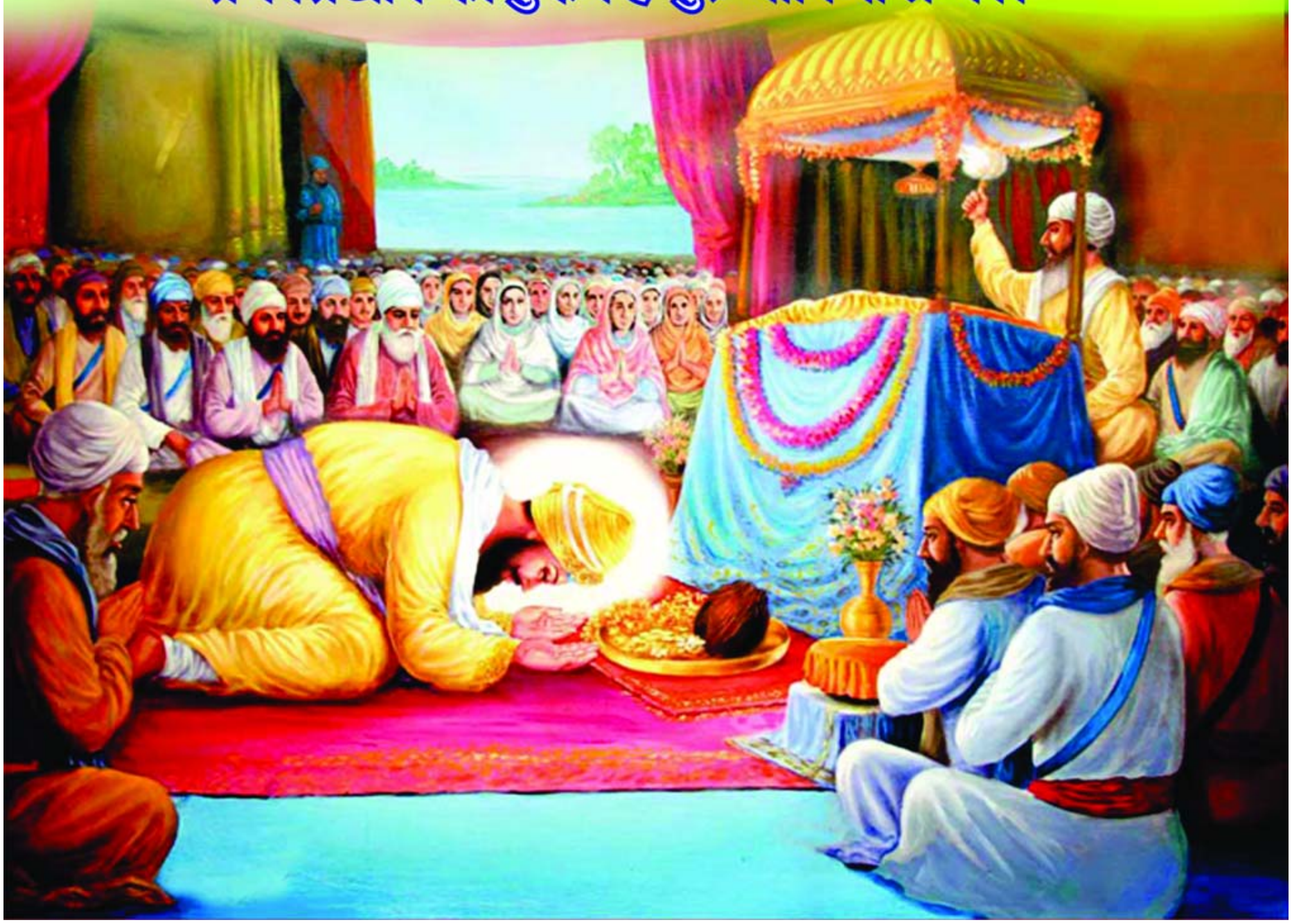

सन्त बाबा लखबीर सिंह जी, कनाडा प्रचार फेरी के दौरान गुरुद्वारा दुख निवारन साहिब, सरी (कनाडा) में कीर्तन द्वारा निहाल करते हुए। नीचे – कीर्तन का रसास्वादन करते हुए श्रद्धालुजन

आत्म मार्ग

वर्ष चौबीसवां - अंक नौवां, अक्टूबर 2019

गुरुद्वारा ईशर प्रकाश रतवाड़ा साहिब

संचालक

श्रीमान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी महाराज (ब्रह्मलीन)
तथा संत माता (बीजी) रणजीत कौर जी (ब्रह्मलीन)

चेयरमैन
सन्त बाबा लखबीर सिंह जी

एडिटर-इन-चीफ
सन्त बाबा हरपाल सिंह जी

प्रबन्ध सम्पादक
भाई (डा.) सुखविंदर सिंह

मुख्य सम्पादक
डा. जगजीत सिंह

मासिक पत्रिका न पहुँचने सम्बन्धी पूछताछ

यदि आपको माह की 15 तारीख तक आत्म मार्ग पत्रिका प्राप्त नहीं हो पाती है तो आप कृप्या निम्नलिखित सम्पर्क नम्बरों पर कार्यलय समय प्रातः 10.00 बजे से सायं 6.00 बजे तक सम्पर्क करने की कृपा करें -

सम्पर्क न. - **84378-12900, 94172-14391, 94172-14379**

Email : atammarg1@yahoo.co.in

Postal Address for any Enquiry, Money Order's :

'ATAM MARG' MAGAZINE
Gurdwara Ishar Parkash, Ratwara Sahib (New Chandigarh) P.O. Mullanpur Garibdas, Teh. Kharar, Distt. S.A.S. Nagar (MOHALI) - 140901, Pb. India

SUBSCRIPTION - शुल्क (देश)

वार्षिक	आजीवन सदस्यता	प्रति कापी
300/-	3000/-	30/-
320/-	3020/- (For outstation cheques)	

SUBSCRIPTION FOREIGN (विदेश)

	Annual	Life
U.S.A.	60 US$	600 US$
U.K.	40 £	400 £
Canada	80 Can $	800 Can $
Australia	80 Aus $	800 Aus $

प्रकाशन के समस्त अधिकार सुरक्षित हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक सन्त बाबा हरपाल सिंह जी ने 'आत्म मार्ग' जै आफ सैट प्रिंटर्ज, 905 इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज़-2, चण्डीगढ़ से छपवा कर मुख्य कार्यालय 'आत्म मार्ग' रतवाड़ा साहिब, डाकखाना मुल्लांपुर, तहसील खरड़, एस.ए.एस. नगर (मोहाली), पंजाब से प्रकाशित किया।

Please visit us on internet at :-
For Atam Marg Email : atammarg1@yahoo.co.in,
Website & Live video -

www.ratwarasahib.in
www.ratwarasahib.org } **(Every sunday)**

Email: sratwarasahib.in@gmail.com

विदेशों में आत्म मार्ग की शाखाएँ

अमेरिका – बाबा सतनाम सिंह अटवाल
फोन तथा फैक्स : 001-408-263-1844

कैनेडा – भाई सरमुख सिंह पंनू, वैनकूवर
फोन : 001-604-433-0408

भाई तरसेम सिंह बैंस – मोबाइल 001-604-862-9525
फोन : 001-604-288-5000

भाई जसबीर सिंह राणू - फोन : 001-604-589-9189

इंगलैंड – बीबी गुरबख्श कौर तथा भाई जगतार सिंह जग्गी
फोनः0044-121-200-2818 फैक्स :0044-121-200-2879,

भाई अरविंदर सिंह (राज) मोबाइलः0044-7968734058

आस्ट्रेलिया : बीबी जस्प्रीत कौरः मोबाइल-0061-406619858

रतवाड़ा साहिब की संस्थाओं के सम्पर्क नम्बर

* आत्म मार्ग मैगज़ीन (पंजाबी, हिन्दी तथा अंग्रेजी)
9417214391, 9417214379, 8437812900

* गुरू गोबिंद सिंह विद्या मन्दिर सीनियर सैकण्डरी स्कूल **(CBSE) - 0160-2255003**

* माता साहिब कौर मुफ्त सिलाई सैंटर - **96461-01996**

* सन्त वरियाम सिंह मैमोरियल पब्लिक सीनियर सैकण्डरी स्कूल **(PSEB)** अंग्रेजी माध्यम - **95920-55581**

* सन्त वरियाम सिंह चैरिटेबल अस्पताल (मुफ्त)
98786-95178, 92176-93845

* इंटरनैशनल डिवाइन स्कूल आफ़ नर्सिंग -
94172-14382

* इंटरनैशनल डिवाइन कालेज आफ़ ऐजूकेशन (बी. एड.)
94172-14382

* अकाल वृद्ध आश्रम (मुफ्त) **98157-28220**

विशेष जानकारी के लिए

श्री मान जी	-	98551-32009
श्री आखण्ड पाठ साहिब बुकिंग	-	94647-12900
आडियो-वीडियो लाईब्रेरी	-	98728-14385, 98555-28517
केवल टी.वी. नेटवर्क	-	94172-14385

अन्य सम्पर्क नम्बर

98889-10777, 96461-01996, 9417214381

विषय-सूची

1. सम्पादकीय 5
   (डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

2. बारहमाहा 7
   श्री मान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

3. नाम सिमरन की विधि 14
   श्री मान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

4. बाबाणियाँ कहानियाँ 22
   श्री मान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

5. नानक से अखड़ीआं बिअंनि जिनी डिसंदो मा पिरी।। 24
   श्री मान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

6. सेवा का फल 35
   सन्त बाबा हरपाल सिंह जी

7. प्यार भरा सुगन्धित जीवन 40
   भाई (डा.) सुखविन्दर सिंह

8. गुरू नानक आगमन 46
   डा. भाई वीर सिंह

9. गुरबाणी अर्थ भण्डार 51
   सन्त हरी सिंह जी 'रन्धावे वाले'

10. स्वामी राम जी के प्रेरणात्मक विचार 53
   डा. स्वामी राम जी

11. विशेष जानकारी - बैंक खाता, आत्म मार्ग मैगजीन सदस्यता प्रारूप, अस्पताल जानकारी, तथा पुस्तक सूची 55

सम्पादकीय

(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

भगत अराधहि एक रंगि गोबिंद गुपाल ॥
राम नाम धनु संचिआ जा का नही सुमारु ॥
अंग - 816

परमात्मा के प्यारे, भक्तजन, सन्तजन, प्रेम रंग में सराबोर, उस परमात्मा का नाम सिमरन करते हैं। उनके पास परमात्मा की बन्दगी का इतना धन होता है कि जिसका अनुमान लगा पाना असम्भव है। उनके बारे में फुरमान है कि 'गुरमुखि कोटि ऊधारदा भाई दे नावै ऐक कणी।।' (अंग - 608) दरअस्ल सांसारिक चकाचौंध में ग्रसित इस जीव को कच्चे तथा सच्चे धन के बारे में कुछ पता ही नहीं चल पाता है। यही कारण है कि उस सच्चे धन की महानता के बारे में पता न होने के कारण यह जीव किसी भी निर्णय पर पहुँच नहीं पाता है।

सतगुरू सच्चे पातशाह जी पावन गुरवाणी के अन्दर हमें यह समझ प्रदान करते हैं कि काचा धनु संचहि मूरख गावार।। मनमुख भुले अंध गावार।। (अंग - 665) जो मनुष्य ज्ञान रूपी नेत्रों से रहित हैं वे कच्चा धन या नाशवान धन ही एकत्र करते रहते हैं। यह धन न तो इस जीव के साथ ही जाता है और न ही यह उसके मन को सन्तोष प्रदान करता है बल्कि यह तो सदैव दुखों का कारण ही बनता है। यह धन कभी तो हाथ से निकल जाता है और कभी हाथ में आ जाता है। 'काचा धनु फुनि आवै जाए।।' दूसरी तरफ जो नाम रूपी सच्चा धन है, वह सदा निभने वाला है और वह पूरे सतगुरू से प्राप्त होता है। 'साचा धनु गुरमती पाए।।' मन के पीछे लगने वाले कच्चे धन को जोड़ते-जोड़ते खप-खप कर, संसार के कूच कर जाते हैं जबकि सच्चे धन का संचय करने वाले परमात्मा के प्यारे सदा के लिए अमर हो जाते हैं। उनकी अमरता शरीर में रहते हुए भी और शरीर का परित्याग करने के बाद भी, जीवों के उद्धार का प्रेरणाश्रोत बनी रहती है। वे दुख-सुख को एक समान सहते हुए नाम रंग में सदैव सराबोर रहते हैं।

सोई भगतु दुखु सुखु समतु करि जाणै
हरि हरि नामि हरि राता ॥ अंग - 574

वे आम लोगों के सदृश्य केवल सांसारिक जीवन ही नहीं जीते हैं बल्कि उनकी जीवन शैली व चाल-ढाल आम सांसारिक मनुष्यों से पृथक होती है -

भगता की चाल सची अति निरमल
नामु सचा मनि भाइआ ॥
नानक भगत सोहहि दरि साचै
जिनी सचो सचु कमाइआ ॥ अंग - 768

उनकी जीवन शैली एक रस परमात्मा के प्रेम में रंगी रहती है। ऐसे सन्तजन परमात्मा के द्वार पर शोभा पाते हैं -

रे रे दरगह कहै न कोऊ ॥
आऊ बैठु आदरु सुभ देऊ ॥ अंग - 252

धंनि धंनि कहै सभु कोइ ॥
मुख ऊजल हरि दरगह सोइ ॥ अंग - 283

इस प्रकार के सन्तजनों की बराबरी कोई भी पण्डित, शूरवीर या राजा नहीं कर सकता है -

पंडित सूर छत्रपति राजा
भगत बराबरि अऊरु न कोइ ॥ अंग - 858

उनकी अवस्था इस प्रकार की बन जाती है कि -

राम कबीरा एक भए है कोइ न सकै पछानी ॥
अंग - 969

परमात्मा और उस परमात्मा के प्यारे में तनिक मात्र भी फर्क नहीं रह जाता है -

तोही मोही मोही तोही अंतरु कैसा ॥ अंग - 93

हरि हरि जन दोइ एक है बिब बिचारि किछु नाहि
जल ते ऊपज तरंग जिऊ जल ही बिखै समाहि।

यह सारी महिमा परमात्मा के नाम रूपी सच्चे धन की है।

परमात्मा के प्यारों और आम मनुष्यों में यही एक अन्तर है जिसे कच्चे धन और सच्चे धन की समझ आ गई वह फिर

कच्चा सौदा नहीं करता है। ऐसे सन्तजन विरले ही होते हैं -

इहु वापारु विरला वापारै ॥
नानक ता कै सद बलिहारै ॥ अंग - 283

निःशंक रूप से इस व्यापार को करने वाले व्यापारी विरले ही होते हैं, लेकिन महाराज जी फुरमान करते हैं कि हम ऐसे लोगों पर बलिहार जाते हैं -

जिसु जन कउ प्रभ दरस पिआसा ॥
नानक ता कै बलि बलि जासा ॥ अंग - 266

जिसे परमात्मा के दर्शनों की प्यास है जिसके मन में दर्शनों के लिए अरदास है और दर्शनों की उम्मीद है ऐसे जीवनों पर बार-बार बलिहार हो जाना चाहिए।

इसी प्रकार वृत्ति के परिचायक थे प्यारे महापुरुष (श्रीमान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी) रतवाड़ा साहिब वाले, जिन्होंने आजीवन न तो कच्चे धन का संचय ही किया और न ही इस तरफ ध्यान ही दिया। बचपन से ही घर में से मिली सिक्खी विरासत ने सच्चे धन की समझ आपको करवा दी थी, फलस्वरूप आप जी ने आजीवन नाम-वाणी की कठिन साधना करते हुए न केवल स्वयं ही व्यतीत किया बल्कि अन्य लाखों प्राणियों को भी इस धन का संचय करने की प्रेरणा प्रदान की। सांसारिक मनुष्य के अन्दर प्रत्येक समय सांसारिक धन को एकत्र करने के प्रयासों के बारे में विचारें चलती रहती हैं, जबकि परमात्मा के प्यारों के अन्दर प्रत्येक समय नाम वाणी रूपी सच्चे धन के बारे में ही विचार चला करती है।

संत रहत सुनहु मेरे भाई ॥
ऊआ की महिमा कथनु न जाई ॥ 1 ॥ रहाऊ ॥
वरतणि जा कै केवल नाम ॥
अनद रुप कीरतनु बिस्राम ॥ अंग - 392

ब्रहम गिआनी का भोजनु गिआन ॥ अंग - 272

आदि अनेकों प्रमाण गुरवाणी के अन्दर विद्यमान हैं, जिनके माध्यम से परमात्मा के प्यारों की आत्मिक अवस्था की झलक प्राप्त होती है। प्यारे महापुरुषों की प्रत्येक क्रिया विलक्षण थी। उनके द्वारा आरम्भ किए गए कार्य आज भी हमें नाम-वाणी के साथ जोड़ रहे है यानि कि सच्चे धन को संचित करने की प्रेणा दे रहे हैं। यदि इस जीव को कच्चे धन व सच्चे धन के बारे में समझ आ जाए तो समझ लो कि उसका जन्म सार्थक हो गया।

आइआ सफल ताहू को गनीऐ ॥
जासु रसन हरि हरि जसु भनीऐ ॥ अंग - 252

प्यारे महापुरुषों ने जीवन भर हमें सच्चे धन के साथ जोड़ा है और वे आज भी हमें उसी धन के साथ जोड़ रहे हैं।

रतवाड़ा साहिब की पावन धरती पर 30-31 अक्टूबर तथा 1-2-3 नवम्बर को सच्चा धन एकत्र करने के लिए महान गुरमति समागम आयोजित किए जा रहे हैं। इन समागमों के अन्दर धन्य श्री गुरू नानक देव महाराज जी के 550 वर्षीय प्रकाश पर्व, श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के गुरुता गद्दी पर्व, समस्त शहीदों का स्मृति दिवस, प्यारे महापुरुषों तथा सम्माननीया माता जी की मधुर स्मृति मनाई जाएगी। इस अवसर पर भारी अमृत संचार होंगे तथा आँखों के मुफ्त आप्रेशन कैंप लगेंगे। इस सुअवसर पर देश-विदेश से अनेकों श्रद्धालुजन अपनी सांसारिक व्यस्तताओं से छुटकारा पाकर सत्संग रूपी सच्चे धन को एकत्र करने के लिए पहुँच रहे हैं। संगत को उत्तम सुविधाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से दो विशेष मीटिंगें हो चुकी हैं। सारे सेवादार अपनी-अपनी सेवाओं को पाकर स्वयं को भाग्यशाली समझ रहे हैं। बाहर से आने वाले समस्त श्रद्धालुजन अपने आने के बारे में अग्रिम रूप से प्रबन्धकजनों को सूचित करने की कृपा करें ताकि उनकी रिहायश के लिए योग्य प्रबन्ध किए जा सकें। ट्रस्ट रतवाड़ा साहिब के वर्तमान मुखी सन्त बाबा लखबीर सिंह जी तथा ट्रस्ट के सारे सदस्यों की तरफ से आप सबको इस महान गुरमति समागम में पहुँचने के लिए हार्दिक निवेदन किया जाता है। आत्म मार्ग का नवम्बर माह का अंक धन्य श्री गुरू नानक देव जी के 550 वर्षीय प्रकाश शताब्दी को समर्पित होगा। यह सारा अंक श्री गुरू नानक देव जी की बख्शीशों से भरपूर लेखों वाला ही होगा। समस्त सुधी व सहृदय पाठकों से सविनम्र अनुरोध किया जाता है कि वे उपर्युक्त तिथियों को सत्संग समागमों में हाजरियाँ भरकर तथा प्रस्तुत अंक को पढ़कर सच्चे धन के लाभ प्राप्त करें। सतगुरू जी सभी को सच्चे धन की कृपा करें।

कार्तिक

(कार्तिक महीने की सक्रान्ति - 17 अक्टूबर, दिन वीरवार)

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

कतिकि करम कमावणे दोसु न काहू जोगु॥
परमेसरु ते भुलिआं विआपनि सभे रोग॥
वेमुख होए राम ते लगनि जनम विजोग॥
खिन महि कउड़े होए गए जितड़े माइआ भोग॥
विचु न कोई करि सकै किस थै रोवहि रोज॥
कीता किछू न होवई लिखिआ धुरि संजोग॥
वडभागी मेरा प्रभु मिलै तां उतरहि सभि बिओग॥
नानक कउ प्रभ राखि लेहि मेरे साहिब बंदी मोच॥
सतिक होवै साधसंगु बिनसहि सभे सोच॥ अंग - 135

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसमें छः ऋतुएं क्रम से अटल आज्ञानुसार आती हैं तथा अपना समय पूरा करके चली जाती हैं। एक अच्छा किसान, इन ऋतुओं के गुप्त रहस्यों को समझता है तथा समय समय पर तैयारी करता रहता है कि कौन सी फसल बोई जाये, कब इसका भरपूर फल मिले। इसी प्रकार जीवन के अन्दर भावों के चक्र चलते रहते हैं। जेठ, आषाढ़ में तपस होती है, सावन वर्षा का मौसम है। भादों बड़ी सख्त गर्मी देकर फसलों को फलने फूलने का अवसर प्रदान करता है। आश्विन में फसलें पक जाती हैं, मक्की काट ली जाती है, चरी आदि भी काट ली जाती है तथा किसान आश्विन के महीने में आने वाली फसल की तैयारी करता है। सूझवान किसान को पता है कि कार्तिक के महीने में, धरती में बीज बोना है तथा समय पर बोये गये बीज, बहुत अच्छी पैदावार देते हैं। आश्विन का महीना लुभाने में ही बीत गया। मिलाप के लिये उमंग उठी, मिलाने वाले के लिये, अपना सब कुछ कुर्बान करने के लिये ऊँची-ऊँची लहरें उठीं। अब कार्तिक का महीना भी आ पहुँचा, जो बोने की ऋतु है। इसमें महाराज जी फ़रमान करते हैं कि यह जीव बो रहा है, निरन्तर बो रहा है। यह अज्ञानता है कि कौन सा बीज डालने में मैं सुखी हो सकता हूँ तथा कौन सा बीज बोने से मैं तनावों में दुखी हो सकता हूँ क्योंकि प्रकृति का अटल नियम है -

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु॥ अंग - 134

मनुष्य जन्म लेता है, जब उसे होश आती है, उस समय से ही बोना शुरू कर देता है। यह कर्मों के बीज अपने समय अनुसार फल देते हैं। जिसका परिणाम सुख तथा दुख में निकलता है।

एक बार गुरू दशमेश पिता को संगत ने पूछा कि पातशाह! इस जीव पर अचानक ही दुख क्यों आ पड़ते हैं तथा सुखों में अचानक क्यों प्रवृत्त हो जाता है? तो गुरू महाराज जी ने कहा कि प्यारो! यह एक बहुत लम्बा चक्कर है, वह इस प्रकार है कि यह जीव परमेश्वर का रूप होता हुआ भी, हउमै के प्रभाव में आकर जीव की उपाधि धारण कर लेता है। चाहे सब कुछ वाहिगुरू जी के हुक्म अनुसार हो रहा है इस हुक्म को भूल कर वह कर्म करता है और वह समझता है कि कर्म मैंने किया है, मैंने सेवा की है, मैं दान करता हूँ। यह पूरी तरह से हउमै के अधीन हुआ जब कर्म

करता है, तो इन कर्मों का फल उसे भुगतना पड़ता है, कर्मों का चक्र चल पड़ता है। उन कर्मों के कारण इसे सुख दुख प्राप्त होते हैं। गुरू महाराज जी फ़रमान करने लगे कि प्रेमियो! भाई दया सिंघ जी मेरा ही रूप हैं। जिसने भी प्रश्न करने हैं, वे उन सबका उत्तर देंगे।

श्री मुख ते सभिहूंनि उचारा।।
दइआ सिंघ मम रूप उदारा।।
करहु प्रशन जेतिक रुचि होइ।।
उतर कहै सकल ही सोइ।।

(श्री गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ, पृष्ठ - 5650)

यह फरमान कर के अन्दर चले गये। भाई दया सिंघ जी कहने लगे कि साध संगत जी, गुरू महाराज जी आप सर्वज्ञ हैं, मैं तो अल्पज्ञ हूँ। आप कर्म के बारे में श्रवण करो जिनके फल के कारण नरक तथा स्वर्ग मिलते हैं। कर्म तीन प्रकार के होते हैं - 1. संचित कर्म 2. प्रारब्ध कर्म 3. क्रियामान कर्म।

जीव के अन्तसकरण में, बीज रूप में तीनों प्रकार के कर्म स्थिर रहते हैं। चेतन आत्मा का अक्ष (प्रतिबिम्ब) अन्तसकरण पर पड़ता है। इस अक्ष के कारण अन्तसकरण जो है वह प्रतिबिम्बत है। उसे आत्मा से सत्ता पहुँचती है। जब तक अज्ञान का अंश विद्यमान है, इन सभी कर्मों के बीज अन्तसकरण में इकट्ठे होते रहते हैं। अन्तसकरण स्वंय जड़ है, जब तक यह आत्मा से सत्ता नहीं लेता, तब तक यह कर्मों को सम्भाल कर रखने में समर्थ नहीं है। कर्मों को धारण करने में अन्तसकरण तब तक समर्थ नहीं होता, जब इसमें चेतन का अक्ष पड़ता है तब यह प्रतिबिम्बत अन्तसकरण, कर्म धारण करता है। अन्तसकरण के चार भेद होते हैं - मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंभाव। जब तक अन्तसकरण अज्ञान सहित है तब तक यह कर्म धारण में समर्थ है। अज्ञान के बिना कर्म धारण नहीं किये जा सकते। सो तीन चीज़ें जब तक इकट्ठी नहीं होतीं, तब तक कर्म धारण नहीं किये जा सकते यानि कर्म इकट्ठे संभाले नहीं जा सकते। वे हैं - एक अन्तसकरण, दूसरा अज्ञान तथा तीसरा चेतन आत्मा। जब यह इकट्ठे हो जाते हैं तो कर्म संग्रह होने शुरू हो जाते हैं, यदि इनमें से एक भी न हो तो कर्म एकत्र नहीं होते। यदि अज्ञान का नाश हो जाये तो कर्म भी खत्म हो जाते हैं। समझने के लिए, सतोगुण रूपी मान लो कि एक मिट्टी है, मिट्टी का ढेला है, चेतन आत्मा रूपी आकाश है, अज्ञान पानी है। मिट्टी तथा पानी मिलकर बर्तन बनाते हैं तथा उसमें आकाश होने के नाते उसे बर्तन कहते हैं, जैसे घड़े के अन्दर आकाश होता है इसी प्रकार अन्तसकरण तथा अज्ञान में आत्मा होती है। इस प्रकार एक बर्तन बन गया। अब यह बर्तन इसमें रखी हुई वस्तु को संभाल लेता है। तीनों चाहे भिन्न-भिन्न हैं, अलग-अलग होने के नाते, ये किसी भी वस्तु को अपने अन्दर धारण नहीं कर सकते। जब ये तीनों इकट्ठे हो जाते हैं तो इसमें चीज़ों को सम्भालने की शक्ति आ जाती है।

सो आत्मा में कर्म धारण करने की सामर्थ्य नहीं है। अन्तसकरण जो है, यही कर्मों के बीजों को सम्भालता है। ऐसे समझो कि अन्तसकरण एक तरकश की तरह है, जिसमें बाण (तीर) सम्भाल कर रखे हुये हैं, जो तरकश में से तीर निकाल कर कमान पर चढ़ा लेता है, जब कमान खींच कर तीर छोड़ दिया तो वह तीर अपने निशाने की ओर चल पड़ता है। वह तीर अपने ठीक निशाने पर लगता है तथा फिर धरती पर गिर जाता है। इसी प्रकार अन्तसकरण में से जब जीव नया जन्म धारण करता है, तो यह कर्म जो उसने उस जन्म में भोगने होते हैं, वह कमान पर चढ़ने के लिये तैयार होते हैं। इन कर्मों को प्रालब्ध कर्म या प्रारब्ध कर्म कहा जाता है। यह कर्म जीव को, धारण किये हुए जन्म में, अवश्य भोगने पड़ते हैं क्योंकि ये कमान के ऊपर से चल पड़ते हैं तथा समय के मुताबिक इन कर्मों ने जीव को, सुख तथा दुख देते ही रहना होता है। सो इन प्रारब्ध कर्मों के बारे में गुरबाणी में फ़रमान आता है-

लेखु न मिटई हे सखी जो लिखिआ करतारि॥

अंग - 937

तथा महापुरुषों का भी मत है -

भोगे बिन भागे नहीं करम गति बलवान॥

ये कर्म जीव को अवश्य भोगने पड़ते हैं। जो तरकस में कर्म शेष रह गये हैं, उन्हें संचित कर्म कहा जाता है यानि कि वे अन्तसकरण के भण्डार (Store) में जमा हो गये हैं तथा समय की इन्तजार करते रहते हैं कि कब इन्होंने कमान के द्वारा चल जाना है, कब जीव को दुख सुख का फल देना है, संयोग वियोग का बर्ताव करना है। सो ये संचित कर्म काफी समय तक अपनी बारी की प्रतीक्षा करते रहते हैं तथा प्रारलब्ध कर्मों में बदल कर सुख दुख देते हैं?

एक साखी आती है कि जब महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया तो कृष्ण महाराज, पाँचों पांडवों सहित शोक व्यक्त करने के लिये, हारे हुये राजा धृतराष्ट्र के पास पहुँचते हैं। उसने

कृष्ण महाराज जी से प्रश्न पूछा कि महाराज! मेरी सुरत सुखमना नाड़ी में होने के कारण, सौ जन्मों के बारे में जानकारी रखती है, इन जन्मों में मैंने ऐसा कोई कर्म नहीं किया जिस में मेरे पुत्र, मेरे जिन्दा रहते, परलोक सिधार जाएं। कृष्ण जी ने कहा कि राजन! यह कर्म तूने 107 वें जन्म में पहले किया था, जिसका फल तुझे भोगना पड़ रहा है। हम तुझे योग बल द्वारा दृष्टिगोचर करवा सकते हैं। राजा देखता है कि उसने सौ हंस पाले हुये थे। एक दिन कहीं से भी मांस न मिलने के कारण आज्ञा दे दी कि आज हंस का मांस बना लो। खाने के बाद उसे अति स्वादिष्ट लगा तो उसने कहा कि हर रोज़ बनाया जाये। इस प्रकार एक-एक करके सारे बच्चे खा गया। उनके माता-पिता जब मानसरोवर झील से वापिस आए तो अपने बच्चों को न देखकर, मोह वश उन्होंने प्राण त्याग दिए। हंस तथा सारस दो ऐसे पंछी हैं, यदि इनके जोड़े में से कोई एक मर जाये तो दूसरा जिन्दा नहीं रह सकता। वे विलाप करते घूमते रहते हैं, अन्त उनके प्राण पंखेरू उड़ जाते हैं। सो यह जोड़ा विरह को सहन न कर सका तथा उनके प्राण पंखेरू उड़ गये। यह दृश्य धृतराष्ट्र ने देखा। बहुत अफसोस हुआ कि यदि मुझे पता होता कि कर्मों का फल अवश्य मिलना है तो मैं सोच कर कर्म करता, पर अब तो कुछ भी नहीं हो सकता था। क्योंकि ये कर्म प्रारलब्ध कर्म बन चुके थे। उसने फिर कृष्ण महाराज जी से सवाल किया कि महाराज! मैं जन्मांध हूँ। कृपा करके वह कर्म भी दिखा दें जिसके कारण मुझे नेत्रहीन होना पड़ा। 104 वां जन्म कृष्ण महाराज ने दिखाया, तो क्या देखता है कि बच्चों के साथ खेल रहा है। बच्चों ने आक की तरह के हरे रंग के टिड्डे पकड़े हुये हैं। इसने भी एक पकड़ लिया तथा एक कीकर से पक्का कांटा तोड़कर, इस टिड्डे की दोनों आंखों में से आर-पार कर दिया तथा उसे जोर से फैंक दिया। वह तड़प-तड़प कर मर गया।

तीसरा प्रश्न उसने किया कि महाराज इन कर्मों का फल 104वें तथा 107वें जन्म के बाद मुझे क्यों मिला? कृष्ण महाराज जी ने फ़रमाया कि राजन! कर्म भोगने में अनेक जीव शामिल होते हैं। जब समय का चक्र इन सभी को एक स्थान पर लाकर खड़ा कर देता है तो उस समय भोगने के लिये कहा जाता है। इस प्रकार यह संचित कर्मों की बारी आई तथा भोगने पड़ते हैं।

अब जो तीसरा कर्म है, उसका नाम क्रियामान कर्म है। हम प्रतिदिन कार्य करते हैं तथा साथ ही कर्मों का अभिमान भी मन में धारण करते हैं तो वे कर्म अन्तसकरण के बर्तन में जाकर जमा हो जाते हैं तथा संचित कर्म बन जाते हैं तथा समय आने पर प्रारब्ध कर्म बन कर अपना फल देते हैं। प्रालब्ध कर्मों के फल तीन प्रकार से मिलते हैं - जात, आयु तथा भोग। जात - चौरासी में भोगे जाने वाले शरीरों को कहते हैं। प्रालब्ध के अनुसार फल यह होता है कि जीव को चौरासी में से कौन सा शरीर देना है, इसे देवता बनाना है या कीड़ा मकौड़ा, पशु आदि या किसी निकृष्ट यौनि में भेजना है। आयु तथा भोग कर्मों के अनुसार मिलने हैं। इसमें दिन, घड़ी, पल पूरी तरह से गिने जाते हैं।

ङणि घाले सभ दिवस सास
नह बढन घटन तिलु सार।।
जीवन लोरहि भरम मोह नानक तेउ गवार।।

अंग - 454

तीसरा, भोगों में कौन-कौन सी चीज़ें इसे प्राप्त होंगी, कितने दुख तथा सुख इसे भोगने हैं? किस प्रकार का शरीर तन्दरूस्त या रोगी, रूप या कुरूप वाला शरीर इसे प्राप्त होना है? यह सब प्रालब्ध के अनुसार होता है। गुरू महाराज जी तो यहाँ तक फ़रमान करते हैं कि मस्तक में यह लेख भी लिखे जाते हैं कि इसे गुरू की प्राप्ति भी होगी या नहीं। वह भी कर्मों के अनुसार होता है। फ़रमान है -

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे
भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी।।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक
जन जन की सोई जागी।। *अंग - 204*

जिन मसतकि धुरि हरि लिखिआ
तिना सतिगुरु मिलिआ राम राजे।
अगिआनु अंधेरा कटिआ गुर गिआनु घटि बलिआ॥

अंग - 450

इन कर्मों का तब तक नाश नहीं होता, जब तक जीव को आत्म ज्ञान की प्राप्ति होकर, जीव भाव पूर्णतया समाप्त होकर, आत्मा रूप अपने आप को नहीं मानता। जब ज्ञान प्रगट हो गया, आत्म साक्षात्कार कर लिया तो जितने भी करोड़ों, अरबों वर्षों के कर्म अन्तसकरण में संचित रूप में पड़े होते हैं, वे सभी नष्ट हो जाते हैं।

गुर का सबदु काटै कोटि करम।। *अंग - 119*

ज्ञान प्राप्त होने पर संचित कर्मों का ही नाश होता है। क्रियावान कर्म अहंभाव न होने के कारण फल देने में असमर्थ

होते हैं तथा प्रालब्ध कर्म जीव को ज्ञान अवस्था में ही भोगने पड़ते हैं पर समरथ गुरू के पास आरक्षित शक्ति है कि किसी को चाहे कर्मयोग स्वप्न में ही कटवा दें। सूली से सूल बना कर भोगवा दें, पर किसी न किसी रूप में भोगने जरूर पड़ते हैं। सो जितने कर्म अन्तसकरण में पड़े हैं, उनका नाश इस प्रकार होता है, जिस प्रकार किसी कमरे में लाखों मन बीज सम्भाल रखा हो, यदि उस घर को आग लग जाये, तो वे दग्ध होकर अपने-अपने फल देने में असमर्थ हो जाते हैं। अन्तसकरण में चित्त, ज्ञान होने पर सत्य स्वरूप होकर शान्त हो जाता है। जब आत्म बुद्धि का प्रकाश हो जाता है, इस आत्म में अनात्म बुद्धि का नाश हो जाता है। आत्मा सत्य है, उसमें असत्य का ज्ञान हो जाता है, भाव यह है कि आत्मा ही आत्मा दिखाई देता है तथा अनात्मा (नाम रूप माया) का नाश हो जाता है। सो सत्य की प्राप्ति करके क्रियावान कर्म ज्ञानवान को फल नहीं देते। संचित कर्मों का संग्रह (Store) दग्ध हो गया। प्रालब्ध के कर्म भोग लिये। फिर ज्ञानी के, कर्म न बचे, जिसने अपने आत्म स्वरूप में निवास कर लिया है, किये हुए कर्म क्रियावान कर्म नहीं बनते तथा कोई भी बन्धन उसके लिये पैदा नहीं होता। कर्म तभी तक फल देते हैं, जब तक यह जीव अपने को देह मानता है। देह अहंकार का त्यागी, कर्मों का बोझ फैंक देता है। शरीर अहंकार के हेतु, करोड़ों जन्मों तक यह जीव घूमता रहता है। गुरु जी का फुरमान है -

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ।।
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि ।। अंग - 466

सो विस्तारपूर्वक कर्मों की गति का वर्णन इसलिये किया गया है कि हमारी समझ में आ जाये कि कर्म क्या होते हैं तथा कैसे कर्म किये जाते हैं? गुरू महाराज इस महीने में उपदेश देते हुए हमें सचेत करते हैं कि प्यारे! जब तुम कर्मों का फल भोग रहे हो, तो फिर दूसरों को दोष क्यों देते हो?

कतिकि करम कमावणे दोसु न काहू जोगु।
अंग - 135

ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआ ।।
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना ।।
अंग - 433

गुरू महाराज जी हमें सचेत करते हुए वाहिगुरू जी के अटल नियम, जिसे हम भूले हुये हैं, हमें पूरी तरह से बताकर फ़रमान करते हैं कि जितने भी संसार में रोग हैं, वे सभी वाहिगुरू जी को पूरी तरह से भूलने के कारण अपने आप ही आकर शरीर को, मन को, बुद्धि को, अन्तसकरण को घेर लेते हैं। यदि हम विचार करें तो यह बात स्पष्ट रूप से हमें माननी पड़ेगी कि पहले मन बीमार होता है, उसके प्रभाव से शरीर में बीमारी प्रवेश कर जाती है। मन मज़बूत रहे, निरोग रहे, चिन्ता रहित तथा क्रोध रहित रहे, तो दुखों को इस शरीर में प्रवेश करने का अवसर ही नहीं मिलता। जो शारीरिक रोग होते हैं, मन की मज़बूती के कारण, इनके अन्दर रोगों के साथ, पूरी शक्ति के साथ युद्ध करने की अथाह शक्ति हुआ करती है। सभी ने यह प्राय: देखा होगा कि यदि किसी आदमी को क्रोध आ जाये तो उसका खून गर्म हो जाता है, खून की गति बहुत तेज़ हो जाती है, नब्ज़ तेज़ चलने लगती है, दिल को दुगनी-तिगुनी ताकत के साथ कार्य करके, क्रोध से हुये विस्फोट को काबू करने के लिए, तीन चार गुणा शक्ति के साथ काम करना पड़ता है। दिल की धड़कन पहने हुए वस्त्रों में दिखाई नहीं देती, टांगे कांपती हैं, हाथ कांपते हैं, बुद्धि को क्रोध का धुआं, पूरी तरह ढक लेता है तथा वह अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाया करती है। चित्त में उथल-पुथल मच जाती है, ऊल-जलूल मुँह में से पागलों की तरह बोलता है तथा हलकाये हुए कुत्ते की तरह मुँह से झाग निकालता है। यदि थोड़ा सा और बढ़ जाये, उसके हाथ में पिस्तौल हो, तो गोली भर कर चला भी दिया करता है। बाद में सारी जिन्दगी इन कर्मों के बदले में पछताना पड़ता है। क्रोध से हुये मानसिक विस्फोट का ऐसा प्रभाव हुआ करता है कि शरीर के करोड़ों सैल (Cells) जल जाते हैं, काम करना बन्द कर देते हैं, भूख नहीं लगती, किसी के साथ बात करने को मन नहीं करता, खाया हुआ भोजन हजम नहीं होता, सिर दुखने लग जाता है। इस प्रकार क्रोध एक विचार ही तो है। इस विचार ने शरीर पर कितना प्रभाव डाला। इसी प्रकार मनुष्य के मन में चिन्ता पैदा हो जाती है, उसकी भूख, प्यास पूरी तरह समाप्त हो जाती है। सारे शरीर की क्रिया उलट-पुलट हो जाती है, ठंडे सांस लेने लगता है, हांफता है, दुनियां में किसी के साथ भी बोलने को जी नहीं करता, खुशियों के समागम उसके लिये व्यर्थ हैं। करोड़ों रूपये खर्च कर शुद्ध मार्बल का घर, पूरी तरह से सजाया हुआ, चिन्ताग्रस्त प्रेमी के लिये कोई आकर्षण पैदा नहीं करता। दुनियां की ओर से अचेत हो जाता है, एक धुन लग जाती है, उसी में डूबा रहता है तथा शरीर के सभी सैल नाड़ी संस्थान (Nervous System) बहुत ही बोझल होकर, अपना कार्य (Function) पूरा करता है। खाये हुये अहार के अंश, अपनी-अपनी जगह, जिगर से भेजे नहीं जा सकते, कब्ज़ हो

जाती है या फिर दस्त (Loose motions) लग जाते हैं, नींद बिल्कुल खत्म हो जाती है, नींद की गोलियां खाकर कुछ सोने का प्रयास करता है, पर फिर भी सो नहीं सकता, डरावने सपने आते हैं, परेशानी वाले सपने आते हैं, वे सोते हुये शरीर पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। सो इस प्रकार मनुष्य पर विचारों का असर होता है। कामुक वृत्ति वाले के शरीर के सैल, हर समय जलते रहते हैं। वीर्य इस शरीर में सबसे शक्तिशाली है। वह भोजन के तत्वों को (compress) करके एक बूंद में एकत्र हो जाता है। कामुक पुरुष अज्ञान वश इस शक्ति को, वासना के अधीन होकर, इसे इतना निर्बल कर देता है कि शरीर में अनेक रोग अपना पक्का अड्डा जमा लेते हैं तथा गुरू महाराज जी के फ़रमान के अनुसार शरीर को गलाना शुरू कर देते हैं जैसे सुहागा डालने से सोना पिघलता है, इसी तरह काम तथा क्रोध शरीर को गलाते हैं।

कामु क्रोधु काइआ कउ गालै।।
जिउ कंचन सोहागा ढालै।। अंग - 932

इसी प्रकार डर आदमी के खून को पानी बना देता है। सारी अक्ल, होश गायब हो जाती है। डर के कारण न आदमी कुछ खा सकता है तथा न ही उसके शरीर को कोई शक्तिशाली अंश खाने पीने की वस्तुओं में से ही प्राप्त होते हैं। भय से मनुष्य कांपता ही नहीं बल्कि सारी प्रणाली (system) में भयानक प्रभाव डालता है। डर के मारे पेशाब निकल जाता है, विष्ठा अपने आप ही कपड़ों में निकल जाती है। आवाज़ कांपने लगती है, अक्ल कोई काम नहीं करती। शरीर पर इसका प्रबल प्रभाव पड़ता है जो काफी समय तक सन्तुलन में नहीं आता। जबरदस्त झटका लगता है। इसी प्रकार आशायें तथा अन्देशे, शरीर पर प्रभाव डालते रहते हैं। पाँच चोरों का हमला इतना ताकतवर होता है कि वह मनुष्य के मानसिक सन्तुलन को नष्ट भ्रष्ट कर देता है। पूरी तरह से मर्यादाहीन कर देता है। जुबान से किसी की निन्दा करनी, बुरा भला कहना, दोष निकालना, यह मानसिक बीमारी हुआ करती है, जिसका जन्म ईर्ष्या से होता है। ईर्ष्यालु मनुष्य के मस्तक पर त्यौरियां चढ़ी रहती हैं, चेहरा डरावना हो जाता है, नेत्रों की मिठास समाप्त होकर, उसमें क्रूरता आ जाती है, उसके होठों का स्नेह पूरी तरह से समाप्त हो जाता है तथा फीकी वाणी उसके मुँह से अपने आप निकलती है। इस रोग की भड़ास निकालने के लिये वह दूसरों पर दोषारोपण करता है तथा निन्दा करके दूसरों के मनों में अकारण ही ऐसी बातें डालने का यत्न करता है, जिनसे उनके मानसिक सन्तुलन को नुकसान पहुँच सके। सो यह सब कुछ क्यों हुआ? यह विचार हमें अवश्य करना पड़ता है। मनोवैज्ञानिक इसके अनेक कारण बताते हैं तथा इलाज बताने का भी प्रयास करते हैं।

माइआ मोहु मेरै प्रभि कीना
आपे भरमि भुलाए।।
मनमुखि करम करहि नही बूझहि
बिरथा जनमु गवाए।।
गुरबाणी इसु जग महि चानणु
करमि वसै मनि आए।। अंग - 67

गुरबाणी के प्रकाश में जब हम विचार करते हैं, तो गुरू महाराज जी का फ़रमान है

परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग॥ अंग - 135

जब हम इस पर गहरी विचार करते हैं तो हमारे अन्दर कुछ प्रकाश पड़ता है, जिससे कुछ अनुभव होता है, वाहिगुरू जी सत्-चित्त-आनन्द तथा निरे ही प्यार का स्वरूप हैं, तथा अमितोज़ (ऐसी शक्ति जिसका नाप तोल न हो सके) के स्वामी हैं। जब वह जीव प्रभु की ओर मुख करता है, तो उस प्रभु में से रस तथा प्यार देती हुई धारा इसके अन्तसकरण में पड़नी शुरू हो जाया करती है, जिसके द्वारा इसकी सोचने की शक्ति, सहन शक्ति इतनी मजबूत हो जाया करती है कि कोई भी डर, कोई भी चिन्ता, आशा, अन्देशा, पाँच चोर - काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार; पाँच विषय - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध; चार आन्तरिक अग्नि - हंस, हेत, कोप, लोभ आदि सभी सन्तुलन में बन्ध जाते हैं तथा नाम जपने से इस जीव के अन्दर अथाह शक्ति पैदा हो जाती है, विश्वास का अनन्त भंडार इसके अन्तसकरण में समा जाता है, जिसके कारण शरीर की सभी कोशिकाएं (Cells) जो आजकल के वैज्ञानिकों द्वारा 14 खरब, 15 अरब बताई जाती हैं, सभी एक ही नियम, उत्साह भरी सोच में आनन्द की उठती लहरों को अनुभव करती हुई एक सूत्र में बन्ध जाती हैं, क्योंकि वाहिगुरू जी अमित शक्ति हैं सो उन में से शरीर के सहने योग्य ऊर्जा (Energy) उनके साथ प्यार में जुड़ी हुई, सहज स्वभाव ही हमारे शरीर में एकत्रित होती रहती है। जितने भी शारीरिक सैल फ्यूज हो चुके होते हैं, वे फिर चेतना के वेग के साथ मिलकर पूरी तरह से स्थिर हो जाते हैं। बड़े से बड़ा उत्पन्न रोग समाप्त हो जाता है। गुरू महाराज जी इसे संक्षिप्त रूप में बताते हैं कि जो प्रेमी नाम की दवा पी लेगा, उसे कभी स्वप्न में भी रोग का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

हरि अउखधु सभ घट है भाई।।
गुर पूरे बिनु बिधि न बनाई।।
गुरि पूरै संजमु करि दीआ।।
नानक तउ फिरि दूख न थीआ।। *अंग - 259*

यह दवाई नाम है, नाम मनुष्य के रोम-रोम में समाया हुआ है। जिस जगह नाम का अनुभव इस शरीर में होता है, उसे महाराज जी सुन्न मण्डल कहकर सम्बोधन करते हैं, जहाँ कोई विचार (फुरना) नहीं है, जहाँ कोई कल्पना नहीं है, कोई भ्रम नहीं है, वहाँ नाम का अनुभव हुआ करता है।

नउ निधि अंम्रितु प्रभु का नामु।।
देही महि इस का बिस्रामु।।
सुंन समाधि अनहत तह नाद।।
कहनु न जाई अचरज बिसमाद।। *अंग - 293*

सो जब परमेश्वर की याद अन्तसकरण में स्थिर हो जाये, तो मनुष्य के सारे रोग, बिना दवाई लिये ही अपने आप ही दूर हो जाया करते हैं। यहाँ तक कि प्रत्यक्ष प्रयोग किया गया है कि जिसके अन्दर नाम की रौं (धारा) पूरे वेग से उठ रही है, उसके द्वारा सिर पर हाथ रखने या सुख से शुभ वाक्य बोलने या उसकी चरण धूलि प्रयोग करके, भयंकर रोगों का भी विनाश हो जाता है। ये सभी वचन निरर्थक नहीं हैं। ये परख कर, देख कर, प्रयोग करके लिखे जा रहे हैं। सैकड़ों प्रेमी जिनको डाक्टरों ने यह कहकर हस्पताल से निकाल दिया था कि तुम्हारा रोग असाध्य है, इसका कोई इलाज नहीं है, उन्होंने भी जब दवाई पूरी विधि से तन मन से प्रयोग की, तो उनके भयानक रोग, बिना जात-पात का विचार किये दूर हो गये। इसलिये गुरू महाराज जी जिस अटल नियम की ओर हमारा ध्यान दिलाते हैं, वह है -

परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग॥ *अंग - 135*

इससे आगे गुरू महाराज जी एक और अटल नियम की ओर ध्यान दिलाते हुए फ़रमान करते हैं कि वाहिगुरू जी से विमुख होकर जीवन बिताने से, जन्म तथा मरण के चक्कर में पड़ा हुआ जीव, सदा ही वियोग की अवस्था से पीड़ित रहता है। माया के भोग कोई रस नहीं देते बल्कि गुरू महाराज जी तो ऐसा फ़रमान करते हैं कि -

सुंदर सेज अनेक सुख रस भोगण पूरे॥
ग्रिह सोइन चंदन सुगंध लाइ मोती हीरे॥
मन इछे सुख माणदा किछु नाहि विसूरे॥
सो प्रभु चिति न आवई विसटा के कीरे॥
बिनु हरि नाम न सांति होइ कितु बिधि मनु धीरे॥
अंग - 707

परमेश्वर से भटके हुए, महा दुखी जीव का कोई बिचौला भी नहीं बन सकता, क्योंकि अटल नियम अनुसार उसने अपने किए कर्मों का फल जरूर भोगना ही है, पर स्वंय जीव को निराशा में डूबने से बचाने के लिए फ़रमान करते हैं कि यदि किस्मत खुल जाये तथा यह जीव परमेश्वर पर ईमान करने लग जाये, उसकी याद में मस्त हो जाये तथा तत्व वेत्ता महापुरुष की संगत करके उसे अपने अन्दर से ही प्रभु का ज्ञान हो जाये तथा जीव भाव, आत्म भाव में बदल जाये, तो सारा वियोग खत्म हो जाया करता है। अन्त में गुरू महाराज जी, हमें प्रार्थना करने की तरकीब बताते हुए फ़रमान करते हैं कि हे प्रभु! हमारे बन्धनों को काट दो, हमारे अवगुणों को मत देख, मिला दे अपना कोई प्रेमी, उसकी संगत में मैं तेरे गुण गाऊं, तेरा बन कर चलूं तो सभी सोच विचार, सभी दुखों का अन्त हो जाये। क्रमवार गुरबाणी में इस प्रकार फ़रमान है -

वेमुख होए राम ते लगनि जनम विजोग।।
खिन महि कउड़े होए गए जितड़े माइआ भोग॥
विचु न कोई करि सकै किस थै रोवहि रोज॥
कीता किछू न होवई लिखिआ धुरि संजोग॥
वडभागी मेरा प्रभु मिलै तां उतरहि सभि बिओग॥
नानक कउ प्रभ राखि लेहि मेरे साहिब बंदी मोच॥
कतिक होवै साधसंगु बिनसहि सभे सोच॥
अंग - 135

सो इस उत्तम उपदेश को कार्तिक के महीने द्वारा गुरू महाराज जी ने प्रकट करके, अटल नियम की ओर हमारा ध्यान दिलाया है, हम इन नियमों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें। वाहिगुरू जी के प्यार में अपना जीवन बितायें, तत्व वेत्ता महापुरुष की संगत करके, सारी सोच विचार को मिटाने की युक्ति सीखें। गुरू घर में इस प्रकार बताया है कि पाँच प्यारों से अमृत पान करके नाम की दात प्राप्त की जाये। वह नाम तत्व वेत्ते महापुरुषों, साधुओं, सन्तों, आरिफों, गुरमुख पदवी को प्राप्त रूहों की संगत में फलीभूत हो जाया करता है। साधु की संगत करते हुये, महान भयंकर दुष्ट भूत वश में हो जाया करते हैं। प्रार्थना करो कि हे प्रभु! मिला कोई ऐसा प्यारा। मिला दे ऐसा कोई गुरमुख, जिसके दर्शन करते ही, तेरे नाम की धुन अन्दर सुनाई देने लग जाये तथा शान्ति की ठण्डी हवायें, हृदय में बहने लग जायें।

आवै साहिबु चिति तेरिआ भगता डिठिआ॥
मन की कटीऐ मैलु साधसंगि वुठिआ॥
जनम मरण भउ कटीऐ जन का सबदु जपि।।
बंधन खोलनि संत दूत सभि जाहि छपि।।
तिसु सिउ लाइनि रंगु जिस दी सभ धारीआ।।
ऊची हूं ऊचा थानु अगम अपारीआ।।
रैणि दिनसु कर जोड़ि सासि सासि धिआईऐ।।
जा आपे होइ दइआलु तां भगत संगु पाईऐ।।
अंग - 520

जिनके दर्शन करके दुर्मति दूर हो जाये, वही सच्चे मित्र हुआ करते हैं।

जिना दिसंदड़िआ दुरमति वंञै
मित्र असाडड़े सेई।।
हउ ढूढेदी जगु सबाइआ
जन नानक विरले केई।। अंग - 520

उनकी संगत में रहकर, प्रभु का नाम जपा जाता है। जब हमारा ध्यान प्रभु के ध्यान में लग जाता है, तो सभी सुख प्राप्त हो जाते हैं तथा रोगों का घर, अनगिनत बीमारियां समाप्त हो जाया करती हैं। अन्दर ठण्डक पैदा हो जाती है, आशायें सभी पूर्ण हो जाती हैं, ज्ञान रूपी अमूल्य पदार्थ गुरू से मिलता है।

होवै सुखु घणा दयि धिआइऐ।।
वंञै रोगा घाणि हरि गुण गाइऐ।।
अंदरि वरतै ठाढि प्रभि चिति आइऐ।।
पूरन होवै आस नाइ मंनि वसाइऐ।।
कोइ न लगै बिघन आप गवाइऐ।।
गिआन पदारथु मति गुर ते पाइऐ।।
तिनि पाए सभे थोक जिसु आपि दिवाइऐ।।
तूं सभना का खसमु सभ तेरी छाइऐ।। अंग - 520

सो साधुओं की संगत करने से प्रेम रस प्राप्त हो जाता है क्योंकि उनकी बाणी में, प्यार के झरने बहते हैं, प्रभु के साथ चित्त लग जाता है। सो ऐसे महापुरुषों की शोभा का कोई अन्त नहीं हुआ करता।

ओथै अंम्रितु वंडीऐ सुखीआ हरि करणे।।
जम कै पंथि न पाईअहि फिरि नाही मरणे।।
जिस नो आइआ प्रेम रसु तिसै ही जरणे।।
बाणी उचरहि साध जन अमिउ चलहि झरणे।।
पेखि दरसनु नानकु जीविआ मन अंदरि धरणे।।
अंग - 320

ऐसे महापुरुषों की शोभा का कोई अन्त नहीं होता है -

साध की महिमासाध की महिमा बेद न जानहि॥
जेता सुनहि तेता बखिआनहि॥
साध की उपमा तिहु गुण ते दूरि॥
साध की उपमा रही भरपूरि॥
साध की सोभा का नाही अंत॥
साध की सोभा सदा बेअंत॥
साध की सोभा ऊच ते ऊची॥
साध की सोभा मूच ते मूची॥
साध की सोभा साध बनि आई॥
नानक साध प्रभ भेद न भाई॥ अंग - 272

सो इसलिये गुरू महाराज जी साधुओं की संगत, जहाँ सदा ही अमृत के झरने बहते हैं, उसमें प्रवेश करने के लिये हमें प्रेरणा देते हैं। उनकी संगत करने से मनुष्य हउमैं के कठोर बन्धनों में से छूट जाता है तथा जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। उनके बारे में आपके फ़रमान है -

तिन की सोभा किआ गणी जिनी हरि हरि लधा।
साधा सरणी जो पवै सो छुटै बधा।
गुण गावै अबिनासीऐ जोनि गरभि न दधा।
गुरु भेटिआ पारब्रहमु हरि पड़ि बुझि समधा।
नानक पाइआ सो धणी हरि अगम अगधा॥
अंग - 320

मनि तनि पिआस दरसन घणी कोई आणि मिलावै माइ।
संत सहाई प्रेम के हउ तिन कै लागा पाइ।
विणु प्रभ किउ सुखु पाईऐ दूजी नाही जाइ।
जिन्ही चाखिआ प्रेम रसु से त्रिपति रहे आघाइ।
आपु तिआगि बिनती करहि लेहु प्रभू लड़ि लाइ।
जो हरि कंति मिलाईआ सि विछुड़ि कतहि न जाइ।
प्रभ विणु दूजा को नही नानक हरि सरणाइ।
असू सुखी वसंदीआ जिना मइआ हरि राइ॥
अंग - 134

गुरू महाराज जी कृपा करें, हमें अपनी बाणी के प्रकाश में चलने का बल प्रदान करें।

नाम सिमरन की विधि

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक सितम्बर, पृष्ठ - 31)

गुरू महाराज जी फुरमान करते हैं कि इसी शरीर के अन्दर ही वाहिगुरू जी रहते हैं -

काइआ नगरु नगर गड़ अंदरि ॥
साचा वासा पुरि गगनंदरि ॥
असथिरु थानु सदा निरमाइलु
आपे आपु ऊपाइदा ॥ 1 ॥
अंदरि कोट छजे हटनाले ॥ अंग - 1033

गुरू जी कथन करते हैं कि जिस प्रकार से ये बाहर के बाजार हैं, इसी प्रकार से हमारे शरीर के अन्दर रिद्धियों-सिद्धियों के भण्डारे भरे पड़े हैं। चाहे वे प्रयोग करें या न करें लेकिन वे पीछे-पीछे सेवार्थ तत्पर रहती हैं। यथा -

नव निधी अठारह सिधी पिछै लगीआ फिरहि
जो हरि हिरदै सदा वसाइ ॥ अंग - 649

उनके आन्तरिक नेत्र खुल जाते हैं और वे आन्तरिक चीजों को देख लेते हैं -

अंदरि कोट छजे हटनाले ॥ अंग - 1033

वे सारी चीजें हमारे अन्दर सम्भाल कर रखी हुई हैं ऐसा नहीं है कि वे अव्यवस्थित रूप से इधर-उधर बिखरी हुई है। उनकी सेवा-सम्भाल के लिए अन्दर दरवाजे बन्द कर दिए -

अंदरि कोट छजे हटनाले ॥
आपे लेवै वसतु समाले ॥
बजर कपाट जड़े जड़ि
जाणै गुर सबदी खोलाइदा ॥ अंग - 1033

सारे दरवाजे अन्दर से बन्द कर दिए हैं जिनके अन्दर इन दरवाजों को खोलने का शौक है उन्हें गुरू से शब्द लेकर उसकी कमाई करनी चाहिए। शव्द के बल से आन्तरिक गेट खुल जाएगा। बहुत सारी विधियों के द्वारा महापुरुष समझाते हैं। कोई एक तरीके से समझाता है, कोई दूसरे तरीके से समझाता है जबकि वास्तव में तो बात वही है -

भीतरि कोट गुफा घर जाई ॥
नऊ घर थापे हुकमि रजाई ॥
दसवै पुरखु अलेखु अपारी आपे अलखु लखाइदा ॥
अंग - 1033

जब यह पुनः गुफा में प्रवेश करता है तो पुनः शरीर के अन्दर जो ये नौ दरवाजे हैं वे अभिमन्त्रित हो जाते हैं अर्थात नियन्त्रण में आ जाते हैं। जिस प्रकार यदि किसी को साँप काट ले तो तान्त्रिक लोग उसे मन्त्र बल के द्वारा अभिमन्त्रित कर देते हैं और सम्बन्धित व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है, इसी प्रकार से यदि किसी के दाँत वगैरह में दर्द होता है तो उसे मन्त्र बल से ठीक कर देते हैं, ठीक इसी प्रकार से जो गुरू का शब्द है उनके द्वारा ये जो नौ घर हैं, वे अभिमन्त्रित हो जाते हैं अर्थात वे नियन्त्रण में आ जाते हैं। अन्यथा ये घर थकान तो अनुभव कर रहे हैं लेकिन इन्हें हासिल कुछ भी नहीं पा रहा है। अब आँखों को ही ले लो, गुरू जी फुरमान करते हैं -

धारना - बहु रंग तमाशे, अ्खीआँ वेख ना र्जीआँ।

हमारे आँखें जब तक सो नहीं जाते हैं, तब तक कुछ न कुछ देखती ही रहती हैं और सो जाने के बाद की यानि कि नींद की भी हो अवस्थाएँ होती हैं। एक तरह से बन्द हो जाती हैं और दूसरी अवस्था वह होती है जहाँ पर मन अभी बाहरी सतह पर ही रहता है यानि कि अभी गहराई में नहीं गया होता है। इस अवस्था में हमारी आँखें सपना लेने लग पड़ती हैं लेकिन वहाँ पर भी ये देखती ही रहती हैं। यहाँ पर थोड़ा सा फर्क होता है, ये आँखें कुछ और है जबकि वे कुछ और है। गुरू जी कहते हैं कि ये आँखें देख देखकर तृप्त नहीं हो रही हैं बल्कि थक रही हैं। धीरे-धीरे ये आँखें समाप्त तो हो जाती हैं लेकिन इनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता है। यथा-

अखी वेखि न रजीआ बहु रंग तमासे।
ऊसतति निंदा कंनि सुणि रोवणि तै हासे।
भाई गुरदास जी, वार 27/9

ये चार बातें सुनता है। रोना, हँसना, निन्दा और स्तुति। इन्हें सुन सुनकर यह दुखी होता रहता है। कान भी निरन्तर सुनते ही रहते हैं लेकिन जो बातें इन्हें सुननी चाहिए थीं, उन्हें तो ये सुनते नहीं हैं। ये तो सुनने के लिए आए थे -

ए स्रवणहु मेरिहो साचै सुनणै नो पठाए ॥
साचै सुनणै नो पठाए सरीरि लाए सुणहु सति बाणी ॥
जितु सुणी मनु तनु हरिआ होआ रसना रसि समाणी॥
अंग - 922

वह जो वाणी है, जिसके बारे में गुरू जी फुरमान कर रहे हैं, दो प्रकार की है। जो इसकी ऊपर परत है उसमें तो यह बाहर से ही सुनता है लेकिन यदि शब्द की कमाई करके गहराई में चला जाए तो फिर उस शब्द की धुन इतनी मनमोहक सुनाई पड़ती है कि जिसके बारे में ब्यान कर पाना भी मुश्किल है। गुरू जी फुरमान करते हैं कि -

अनहत बाणी थानु निराला ॥
ता की धुनि मोहे गोपाला ॥ *अंग - 186*

उस धुन को सुनकर तो गोपाल भी मोहित हो जाता है, मनुष्य की तो बात ही क्या है। वह धुन तो व्यक्ति को मस्त कर देती है।

श्रीमान सन्त बाबा ईशर सिंह जी राड़ा साहिब वाले हमारे पास चण्डीगढ़ में आए हुए थे। उनके अस्थाई आवास के लिए हमने सैक्टर 10 चण्डीगढ़ की एक कोठी में प्रबन्ध किया हुआ था। वहाँ पर आपको मिलने के लिए एक विद्वान पुरुष आया। महापुरुषों ने भी देख लिया कि यह कोई अच्छा विद्वान पुरुष आया है। उसने आकर नमस्कार की और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। महापुरुष कहने लगे, कहो बन्धु! कैसे आए?

वह कहने लगा, सुना था सुन नहीं हुआ, देखा था देख नहीं हुआ।

महापुरुष बोले, अभ्यास अभी कम था।

उसने नमस्कार की और चुपचाप चला गया, इससे आगे उसने कोई बात ही नहीं की। सारे देखकर कहने लगे, यह क्या बात हुई? यह तो किसी को कुछ भी पता नहीं चल पाया है।

सबने मिलकर विनती की कि महापुरुषो! यह बात हम लोगों को तो कुछ भी समझ में नहीं आ पाई है। यह व्यक्ति इतनी दूर से आया था कह रहा था कि मैं होशियारपुर से आया हूँ। मुझे महापुरुषों के बारे में पता चला था कि वे आए हुए हैं, इसलिए मेरे मन में ख्याल ाया कि मैं उनसे अपने प्रश्न का उत्तर पूछ आऊँ। यहाँ पर आकर तो उसने कुछ पूछा ही नहीं है? हम लोगों के लिए तो यह जिज्ञासा की बात बन गई है, कृप्या आप इसका रहस्योदघाटन करने की कृपा करें ताकि हम लोगों की जिज्ञासा शान्त हो सके।

महापुरुष कहने लगे, प्रेमीजनो! यह एक आन्तरिक अवस्था की बात है जिस जगह पर एक ऐसा नाद आता है, जिसे का सामान्य अवस्था में सुन पाना बहुत कठिन है क्योंकि उस नाद के द्वारा सारे शरीर में झन्नाहट उत्पन्न हो जाती है। यदि व्यक्ति का अभ्यास बहुत गहरा हो तो वह उस नाद को सुन पाता है। जिसे अनहद बाणी कहते हैं, यह निचली बात है जबकि इससे ऊपर परमात्मा के द्वार पर जो प्रत्येक समय संगीत बज रहा है, वह अद्विितीय है, आत्मिक हैं -

घर महि घरु देखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु ॥
पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु ॥
अंग - 1291

पहले पाँच शब्द सुनते हैं -

पाताल तह खंड मंडल हैरानु ॥
तार घोर बाजिंत्र तह.......॥ *अंग - 1291*

अगली बात पुनः आ गई कि 'तार घोर बाजिंत्र तह'-

तार घोर बाजिंत्र तह साचि तखति सुलतानु ॥
सुखमन कै घरि रागु सुनि सुंनि मंडलि लिव लाइ ॥
अकथ कथा बीचारीऐ मनसा मनहि समाइ ॥
ऊलटि कमलु अंम्रिति भरिआ
इहु मनु कतहु न जाइ ॥
अजपा जापु न वीसरै आदि जुगादि समाइ ॥
सभि सखीआ पंचे मिले गुरमुखि निज घरि वासु ॥
सबदु खोजि इहु घरु लहै नानकु ता का दासु ॥
अंग - 1291

कहने लगे कि इसकी सुरति यहाँ पर पहुँचती थी। वह प्रकाश जो है, वह इतना मीठा है और इतना प्यारा है तथा शरीर को इतनी झरनाहट देने वाला है कि जब वह आत्मिक ऊर्जा इसे स्पर्श करती है तो उसे सहन कर पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। यही कारण है कि हमने उसे कह दिया कि तुम्हारा अभ्यास अभी कम है। हमारे अन्दर ही सब कुछ व्यवस्थित ढंग से सम्भाल कर रखा हुआ है और हमारे अन्दर ही शब्द सुनाई देते हैं -

भीतरि कोट गुफा घर जाई ॥
नउ घर थापे हुकमि रजाई ॥ *अंग - 1033*

जब हम इस घर में प्रवेश कर जाते हैं तो फिर जो हमारे नौ घर होते हैं उन्हें ठाक दिया जाता है, अभिमन्त्रित कर दिया जाता है, फिर वे इधर-उधर दौड़ने की बजाए एक जगह पर टिक कर बैठ जाते हैं। वहाँ पर फिर क्या दिखाई पड़ता है-

दसवै पुरखु अलेखु अपारी आपे अलखु लखाइदा ॥
अंग - 1033

जिसे हम ढूंढ़ते फिरते हैं -

बाहरि ढूढन ते छूटि परे
गुरि घर ही माहि दिखाइआ था ॥ अंग - 1002

फिर पता चल जाता है कि यह तो हमने व्यर्थ में ही अपना समय बरबाद कर लिया है।

बाबा फरीद जी ने पहले बारह साल तपस्या की उसके बाद बारह वर्ष पुनः तपस्या की। जब ऐसी अवस्था आ गई कि आपका शरीर पूरी तरह से सूख कर कांटा हो गया तो फिर उनके मन में अत्यधिक निराशा आ गई कि अब तो शरीर भी साथ देने से पीछे हटने लग पड़ा है, अब क्या होगा। आप इस तरह से फुरमान करते हैं -

धारना - तन सूक के ह्डाँ दी मुठी हो गिआ,
अजे वी ना र्ब बहुड़िआ।

फरीदा तनु सुका पिंजरु थीआ तलीआँ खूंडहि काग॥
अजै सु रबु न बाहुड़िओ देखु बंदे के भाग ॥
अंग - 1382

किस प्रकार के भाग्य? कितनी देर हो गई तपस्या करते हुए, इन्तजार करते हुए। उस समय कितना तगड़ा शरीर था, कितना सुन्दर शरीर था -

फरीदा इनी निकी जंघीऐ थल डूंगर भविओम्‌ ॥
अजु फरीदै कूजड़ा सै कोहाँ थीओमि ॥
अंग - 1378

फरीद ने जितना भ्रमण किया है, जब हम उनके बारे में पढ़ते हैं तो मन में हैरानी आ जाती है कि ईरान से लेकर उससे आगे टर्की से लेकर आसाम, बर्मा आदि जगहों पर जंगलों में, पर्वतों पर आप जी घूमते रहे। आप कथन करते हैं कि अब तो मैं सब्र करके प्रतीक्षा कर रहा हूँ और प्रतीक्षा करते-करते शरीर सूख कर काँटा हो गया है। यह शरीर तो अब मुर्दे की भांति हो गया है और इसे मुर्दा समझ कर ही मेरे शरीर को खाने के लिए मेरे ऊपर काँव आकर बैठने लग पड़े हैं। कौआ बहुत ही शैतान पक्षी होता है। वह सबसे पहले आँख पर चोंच मारकर देखता है कि कहीं इसके अन्दर अभी जान शेष तो नहीं है? कहीं ऐसा न हो कि यह मुझे ही पकड़ ले। इस प्रकार जब फरीद जी के माथे पर कौआ आकर बैठता है तो आपकी बाँह धीरे से हिलती है और साथ ही आप धीमी आवाज में विनती करते हैं कि -

धारना - ए कागा! इह दोड़े नैणाँ मत छेड़िओ,
मैनूं पिर देखण दी आस।

कागा करंग ढढोलिआ सगला खाइआ मासु ॥
ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस ॥
अंग - 1382

आपने घोर लगन के साथ घोर तपस्या की आपका शरीर सूख गया और आपको मुर्दा समझ कौए आ गए। आप कहने लगे, भैया! तुम मेरी इन दो आँखों को न खाने लगना क्योंकि इन्हीं के द्वारा तो मुझे परमात्मा को देखने की उम्मीद है। यह तपस्या की पराकाष्ठा थी।

उस समय किसी तत्व वेत्ता महापुरुष ने फरीद जी की जब इस हालत को देखा तो वे कहने लगे, फरीद जी! तुमने यह कैसा हाल बनाया हुआ है?

फरीद जी बोले -

तनु तपै तनूर जिऊ बालणु हड बलंनि्‌ ॥
पैरी थकाँ सिरि जुलाँ जे मूं पिरी मिलंनि्‌ ॥
अंग - 1384

मेरे हाड-पैर जल रहे हैं, मेरे अन्दर विरह की अग्नि जल रही है और मेरे अन्दर परमात्मा के मिलाप की आग लगी हुई है। यदि मैं उसकी तरफ जाते-जाते थक जाऊँ तो फिर सिर के बल चलने लग पड़ूँ बस येन-केन-प्रकारेण मेरा परमात्मा के साथ मिलाप हो जाए -

आवाज आई, उन्होंने कहा, फरीद जी!

तनु न तपाइ तनूर जिऊ बालणु हड न बालि ॥
सिरि पैरी किआ फेड़िआ अंदरि पिरी निहालि ॥
अंग - 1384

जिसे तुम ढूँढ़ रहे हो वह तो तुम्हारे अन्दर बैठा हुआ है-

धारना - पिआरे जंगलाँ दे विच काहनूं ढूंडदैं,
खोज मन आपणे नूं।

फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि॥
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि ॥
अंग - 1378

बाबा फरीद के चौबीस वर्ष तपस्या करते-करते बीत गए लेकिन उसे कोई भी प्राप्ति नहीं हो पाई। आवाज आई 'हनूस दिली दूर असत' अभी तुम्हारा कुछ भी नहीं बन पाया है और अभी तो दिल्ली बहुत दूर है। निःशंक रूप से तुम्हारे अन्दर रिद्धियों-सिद्धियों की शक्ति आ गई है लेकिन तुमसे अधिक यह शक्तियाँ तो उस लड़की के अन्दर आ गई हैं जो कि पानी की बाल्टियाँ उड़ेल रही थी। बह बीस-बाइस वर्ष की लड़की, घर में रहती है और उसके अन्दर भी इतनी शक्ति आ गई है? उस दृष्टि से तो तुम्हारा कुछ भी नहीं बना

है। वह दोबारा फिर जंगलों में तपस्या करने के लिए चला जाता है और बहुत अधिक घोर तपस्या की। फरीद जी को उस तत्व वेत्ता महापुरुष ने कहा कि ऐ फरीद! तुम जंगलों के अन्दर परमात्मा को क्यों ढूँढ़ते घूम रहे हो? परमात्मा तो तुम्हारे अन्दर है?

हऊ ढूंढेंदी सजणा सजणु मैडै नालि ॥
जन नानक अलखु न लखीऐ गुरमुखि देहि दिखालि॥
अंग - 1318

तुम किसी गुरमुख की शरण में पड़ जाओ। जब तक तुम ऐसा नहीं करोगे तब तक तुम्हारे आन्तरिक नेत्र खुल नहीं पाएँगे फलस्वरूप तुम्हारा भ्रम दूर नहीं हो पाएगा।

पाँच प्रकार के भ्रम के बारे में मैंने पिछले दीवान में जिक्र किया था। वह भ्रम तुम्हारा दूर नहीं हो पाएगा क्योंकि तुम्हारे नेत्रों में अभी अन्धकार छाया हुआ है। जाओ किसी पूर्ण पुरुष की शरण ग्रहण कर लो।

इस प्रकार से हमारे अन्दर ही परमात्मा है लेकिन हम उसे न देखकर बाहर ही देखते रहते है -

अखी वेखि न रजीआ बहु रंग तमासे।
भाई गुरदास जी

हमारी आँखें निरन्तर बाहर ही देखती रहती है। अन्दर के बारे में तो उन्हें तनिक सा भी पता नहीं है। वह जो मन्त्र है 'सिम-सिम' जिसके द्वारा अली बाबा के दरवाजे खुल जाते थे, वह समर्थ गुरू से ही प्राप्त होता है। उसकी कमाई करने के बिना आन्तरिक उन्नति नहीं हुआ करती है। चाहे तुम जितना मर्जी पढ़ते रहो, जितने मर्जी अर्थ सीखते रहो, चाहे जितना मर्जी व्याख्यान देते रहो लेकिन जब तक आन्तरिक नेत्र खुल नहीं पाते हैं, तब तक बात नहीं बन पाया करती है। यह प्रयोगात्मक बात है। गुरू जी फुरमान करते हैं -

भीतरि कोट गुफा घर जाई ॥
नऊ घर थापे हुकमि रजाई ॥

पुरखु अलेखु अपारी आपे अलखु लखाइदा ॥
अंग - 1033

वह खुलता क्यों नहीं है? उसका कारण क्या है? गुरू जी कहते हैं कि इसकी वजह यह है कि -

नऊ घर देखि जु कामनि भूली बसतु अनूप न पाई॥
अंग - 339

तुम्हारी सुरति नौ दरवाजों में घूम रही है। जो तुम्हारा असली घर हैं, उसके सारे दरवाजे बन्द हो गए हैं। इसका कारण यह है कि तुम्हें करोड़ों साल हो चुके हैं, तुमने दोबारा उस घर में प्रवेश किया ही नहीं है -

फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ मानस देह लही ॥
नानक कहत मिलन की बरीआ सिमरत कहा नही ॥
अंग - 631

गुरू जी कहते हैं कि उस घर में प्रवेश किए हुए थोड़ा बहुत समय नहीं गुजरा है बल्कि बहुत सारे युग व्यतीत हो गए हैं। इस समय तुम्हारी बारी आ गई है लेकिन तुम उस मार्ग की तरफ अग्रसर क्यों नहीं होते हो? समय निरन्तर बीतता जा रहा है और समय के बीत जाने के बाद तुम्हारे कुछ भी पल्ले पड़ने वाला नहीं है। फिर देख-देख कर थक जाओगे, सुन-सुन कर थक जाओगे, खा-खा कर थक जाओगे, सुगन्ध ले लेकर थक जाओगे और समाप्त हो जाओगे क्योंकि भोगों को कोई भोग नहीं सकता है बल्कि भोग, भोगने वाले को ही खा जाते हैं।

वास्तविक बात यह है कि गुरू जी जहाँ पर तुम्हें ले जाना चाहते हैं, उस दरवाजे को तुम खोलने की कोशिश करो और उसके लिए शब्द की कमाई करो।

आत्म मार्ग मासिक पत्रिका के पिछले अंक में डा. वेद भारती (डि. लिट्) जी का एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसके अन्दर उन्होंने बहुत ही सरल ढंग से इस बात का उल्लेख किया है कि वह दरवाजा किस प्रकार से खुलता है। वह बहुत ही सरल बात है, अधिक कठिन नहीं है। उसे आप ध्यानपूर्वक पढ़े, आपको सब कुछ पता चल जाएगा कि आपने अपने ही घर को किस प्रकार से खोलना है और उसके अन्दर किस प्रकार से प्रवेश करना है क्योंकि उसे ताला लगे हुए युगों के युग बीत चुके हैं। परमात्मा ने उस घर को ताला लगाकर समर्थ पुरुष को उसकी चाभी पकड़ा दी है। समझने के लिए उस समर्थ पुरुष को हम 'गुरू' कह सकते हैं -

जिस का ग्रिहु तिनि दीआ ताला कुंजी गुर सऊपाई॥
अनिक ऊपाव करे नही पावै बिनु सतिगुर सरणाई ॥
अंग - 205

बिनु सबदै अंतरि आनेरा ॥
न वसतु लहै न चूकै फेरा ॥
सतिगुर हथि कुंजी होरतु दरु खुलै नाही
गुरु पूरै भागि मिलावणिआ ॥ अंग - 124

जब तक वह शब्द प्राप्त नहीं होता है, तब तक न तो अन्दर का अन्धकार ही दूर होता है और न ही वह कीमती वस्तु प्राप्त हो पाती है। वह वस्तु कितनी कीमती है उसके बारे में गुरू जी फुरमान करते हैं -

साई नामु अमोलु कीम न कोई जाणदो ॥

जिना भाग मथाहि से नानक हरि रंगु माणदो ॥
अंग - 81

नाम की महिमा संत रिद वसै ॥
संत प्रतापि दुरतु सभु नसै ॥
संत का संगु वडभागी पाईऐ ॥
संत की सेवा नामु धिआईऐ ॥
नाम तुलि कछु अवरु न होइ ॥
नानक गुरमुखि नामु पावै जनु कोइ ॥ अंग - 265

वह नाम जो है, वह इतना कीमती है कि गुरू जी संसार की बड़ी से बड़ी प्राप्ति को भी उसके सामने तुच्छ कथन कर रहे हैं और चेतावनी दे रहे हैं कि देखना कहीं उसे भूल मत जाना -

धारना - किते भुल ना जाईं ओ मनाँ नाम नूं,
मोतीआँ दे मंदर वेख के।

मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जड़ाउ ॥
कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ ॥
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥
अंग - 14

यह ठीक है कि तुम्हें बहुत सुन्दर घर मिल गए हैं, सुगन्धयुक्त रिहायश मिल गई है, सारी सुविधाएँ प्राप्त हो गई हैं, मोती जड़ित पार्क मिल गए हैं -

मोहणी मुखि मणी सोहै करे रंगि पसाउ ॥
अंग - 14

रिद्धियाँ सिद्धियाँ मिल गई हैं, राजनैतिक शक्ति प्राप्त हो गई है लेकिन यदि तुम्हें नाम भूल गया तो फिर कुछ भी तुम्हारे पल्ले में नहीं रह पाएगा -

धारना - जल बल जावे जिऊड़ा नाम तों बिनाँ।

हरि बिनु जीऊ जलि बलि जाउ ॥
मै आपणा गुरु पूछि देखिआ अवरु नाही थाउ ॥
अंग - 14

यह व्यक्ति परमात्मा को इतना अधिक भूल गया है कि उसे साथ में रहता हुआ परमात्मा भी दिखाई नहीं पड़ रहा है और यह उसकी तलाश में बाहर भटक रहा है। दरअस्ल यह उसे पूर्णतः विस्मृत कर चुका है। यह आँखों व कानों के द्वारा भूल गया है -

अखी वेखि न रजीआ बहु रंग तमासे।
ऊसतति निंदा कंनि सुणि रोवणि तै हासे।
भाई गुरदास जी, वार 27/9

स्वादों के कारण भूल गया है -

सादी जीभ न रजीआ करि भोग बिलासे।
नक न रजा वासु लै दुरगंध सुवासे।
रजि न कोई जीविआ कूड़े भरवासे।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी सची रहरासे।
भाई गुरदास जी, वार 27/9

इन सबके माध्यम से यानि कि इनके बीच से देखता, सुनता, स्वाद लेता परमात्मा को पूर्णतः भूल चुका है। मानो नौ घरों में घूमते-घूमते कामिनी अपने पति को पूर्णतः भूल ही गई है। गुरू जी समझाते हुए कथन करते हैं -

खट नेम करि कोठड़ी बाँधी बसतु अनूपु बीच पाई ॥
कुंजी कुलफु प्रान करि राखे करते बार न लाई ॥
अंग - 339

इसके अन्दर एक वस्तु डाल दी जो कि उपमा रहित है और जिसे आत्मा कहते हैं। इसे छः नियमों के तहत बाँधा हुआ है। रीढ़ की हड्डी में छः गाँठें दी हुई हैं, जिनके अन्दर ऊर्जा का बहाव होता है, जिसे कि जीवन ऊर्जा कहते हैं उसके निचले हिस्से में कुण्डलिनी शक्ति का निवास है। पहले के समयों में प्राणायाम के द्वारा दर्जा-ब-दर्जा भुजंगा नाड़ी के मुँह को, जो कि रीढ़ की हड्डी के अन्तिम छोर पर स्थित है, खोला करते थे। उस जगह पर मूलाधार चक्र है।

उस समय वे बड़े-बड़े प्राणायाम किया करते थे। लगभग डेढ़ सौ प्रकार के प्राणायाम हैं। जो लम्बा प्राणायाम होता है वह 84,42 का होता है। 42 बार वाहिगुरू-वाहिगुरू अन्दर की तरफ श्वास को खींचते हुए तथा 84 बार श्वास को रोकते हुए तथा 42 बार श्वास को छोड़ते हुए वाहिगुरू-वाहिगुरू करना है। इसका परिणाम क्या निकलता है? इसका परिणाम यह होता है कि यदि एक हजार लोग प्राणायाम करना शुरू करेंगे तो उसमें से 999 लोग पागलखाने पहुँच जाएँगे क्योंकि वहाँ पर श्वासों की गर्मी ही इतनी अधिक उत्पन्न हो जाती है। दूसरी बात यह है कि इस शक्तिशाली अभ्यास के लिए न तो इसके पास ब्रह्मचर्य की शक्ति संरक्षित है न ही शारीरिक शक्ति है। खाद्य पदार्थ जो हैं, उनकी गुणवत्ता का तो कहना ही क्या है, हम लोग पहले के समय में जिस देशी गेहूँ का उपभोग किया करते थे, उसमें 21 प्रतीशत प्रोटीन हुआ करती थी लेकिन जो हाईब्रिड गेहूँ हम लोग आजकल उपभोग करते हैं, उसके अन्दर केवल 8 प्रतिशत प्रोटीन ही विद्यमान है। अब स्वयं ही देख लो कि खाना खाते समय 13 प्रतिशत कम प्रोटीन हमारे अन्दर जाती है, इसलिए उस प्रकार के शरीर का निर्माण तो अब हो ही नहीं पाता है। जो पहले के लोगों के शरीर हुआ करते थे, उन्हें यदि साँप भी काट लेता था तो उन्हें जहर ही नहीं चढ़ा

करती थी, यदि मधुमक्खियाँ लड़ जाती थीं, तो वे स्वयं ही मर जाती थीं। कहने का तात्पर्य है कि उस समय लोगों के शरीर, आजकल शरीरों की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली हुआ करते थे, इसलिए वे बड़े-बड़े काम किया करते थे।

इस बार जब मैं अपने गाँव गया तो एक बुजुर्ग ने मेरे पास सन्देश भिजवाया कि मैं उसे मिलने के लिए अवश्य जाऊँ। उसकी आयु 110 वर्ष की हो चुकी थी। जब वह युवा था तो उसने चक्की के पाटों को कन्धों में डालकर और सीढ़ियों पर चढ़कर, मकान की छत पर पहुँचा दिए थे। जब वह बुढ़ापे में आ गया तो उसने कहा कि कोई नौजवान इन चक्की के पाटों को मकान की छत से नीचे ही उतार कर दिखला दे जबकि मैंने तो इन्हें छत पर पहुँचाया था। किसी ने भी उन चक्की के पाटों को हाथ नहीं डाला। अब कुछ समय पहले ही उन्हें नीचे उतारा गया है और उन्हें उतारने में 20-25 लोगों ने योगदान किया। उनके बीच में रस्से डाले गए, तब कहीं जाकर उन्हें नीचे उतारा जा सका। अतः पहले वाले जमाने की तो अब बात ही समाप्त हो चुकी है। कारण यह है कि उस प्रकार की खुराक ही नहीं रह गई है। जब अच्छी खुराक ही नहीं है तो फिर हम लोग इतने कठिन साधन किस प्रकार से कर लेंगे। यदि हम प्राणायाम करने लग पड़े तो कुछ ही दिनों में हम पागलखाने ही पहुँच जाएंगे। दूसरी बात यह है कि ब्रह्मचर्य तो है ही नहीं। हम यह जानते ही नहीं हैं कि बह्मचर्य किसे कहते हैं। कोई शरीर ऐसा नहीं है जो कि शत प्रतिशत ब्रह्मचर्य वाला हो। सभी विषय-विकारों में पड़े हुए हैं और अपनी ऊर्जा को बरबाद कर रहे हैं। यही कारण है कि प्राणायाम जैसे कठिन साधनों को आजकल कर पाना नामुमकिन ही है और इसीलिए श्री गुरू नानक देव जी ने जन साधारण को कहा कि तुम लोग 'नाम सिमरन' के सरल साधन को अपनाओ तथा प्राणायाम जैसे कठिन साधनों का त्याग करो। इसके साथ ही तुम्हें एक और तरीका बतला देते हैं जो कि बहुत आसान हैं और प्राणायाम का ही सूक्ष्म रूप है। दरअस्ल हमारे शरीर के अन्दर पाँच प्रकार की ऊर्जा होती है, जिसे प्राण शक्ति भी कहते हैं। जो हमारी अपान शक्ति होती है, जो नीचे की तरफ होती है, उसे प्राणों के द्वारा यानि कि प्राण और अपान को इकट्ठा करके और दोनों का जोड़ लगाकर ऊर्ध्वगामी कर देते थे। होता यह था कि जहाँ से यह शक्ति शुरू होती है, वहाँ पर साँप के मुँह के सदृश्य एक माँस का टुकड़ा सा चढ़ा होता उसे श्वासों की गर्मी से पिघला देते थे और नरम कर देते थे या एक तरफ हटा देते थे। इसके बाद श्वासों को रीढ़ की हड्डी में दाखिल कर देते थे। वहाँ पर पहले होता था मूलाधार चक्र और दूसरा होता था, स्वाधिष्ठान चक्र। इसके बाद तीसरा चक्र जो था वह नाभि के अन्दर था और उसे मणिपूरक चक्र कहते हैं। चौथा होता है - विशुद्ध चक्र। इसके बाद जहाँ पर दोनों आँखें और नाक की जड़ है, वहाँ पर होता है - आज्ञाचक्र। ये योगी लोग यहाँ तक आ जाया करते थे। यथा -

खट नेम करि कोठड़ी बाँधी बसतु अनूपु बीच पाई ॥
कुंजी कुलफु प्रान करि राखे करते बार न लाई ॥
खट नेम करि कोठड़ी बाँधी बसतु अनूपु बीच पाई ॥
कुंजी कुलफु प्रान करि राखे करते बार न लाई ॥
अब मन जागत रहु रे भाई ॥ *अंग - 339*

अब यहाँ पर आकर करना क्या है? गुरू जी कहते हैं कि यहाँ पर पहुँच कर बस तुम जागते रहो ताकि माया का परिवार तुम्हारे ऊपर दोबारा आक्रमण न कर दे और जिनके फलस्वरूप तुम पुनः रिश्तेदारियों में, भाईचारों में, जायदादों में या वैर विरोध में ही न फँस जाओ। जब तुम किसी को मित्र व दूसरे को वैरी समझने लग पड़ोगे तो उसके बारे में गुरू जी का फुरमान है -

जब धारै कोऊ बैरी मीतु ॥
तब लगु निहचलु नाही चीतु ॥
जब लगु मोह मगन संगि माइ ॥
तब लगु धरमु राइ देइ सजाइ ॥ *अंग - 278*

सारी बातों के बारे में तथा उनके परिणामों के बारे में 'श्री सुखमनी साहिब' की वाणी में बहुत खोल कर बतलाया गया है। अतः गुरू जी कहते हैं कि तुम अब जागते रहो क्योंकि -

गाफलु होइ कै जनमु गवाइओ चोरु मुसै घरु जाई ॥
अंग - 339

तुमने गाफिल होकर अपना जन्म बरबाद कर लिया है तथा चोर जो है, वे सब तुम्हारे घर को लूटते जा रहे हैं। गुरू जी हमें सचेत करते हुए फुरमान करते हैं कि प्रेमी पुरुष! कहीं ऐसा न हो कि चोर तुम्हें लूट ही न लें।

अतः यदि तुम बच सकते हो तो बच जाओ।

धारना - फिरदे ठगवारे ओ वेखीं ना ठगिआ जावीं।

गुरू जी कहते हैं कि तुम तो इन सारे ठगों के द्वारा घिरे पड़े हो -

राजु मालु रुपु जाति जोबनु पंजे ठग ॥
एनी ठगीं जगु ठगिआ किनै न रखी लज ॥
अंग - 1288

ये सब तुम्हारे नाम रूपी धन को ठग रहे हैं -

इसु देही अंदरि पंच चोर वसहि
कामु क्रोधु लोभु मोहु अहंकारा ॥
अंम्रितु लूटहि मनमुख नही बूझहि
कोइ न सुणै पूकारा ॥ अंग - 600

गुरू जी सचेत करते हैं कि तुम जागते रहो। जीव कहता है कि मैं तो जाग ही रहा हूँ।

गुरू जी कहते हैं कि तुम जाग कहाँ रहे हो? तुम्हारी तो आँखें भी सोई पड़ी हैं, कान भी सोए पड़े हैं, तुम्हारी जीभ भी सोई पड़ी है और तुम्हारा मन भी सोया पड़ा है।

जीव पूछता है महाराज जी! वह कैसे? गुरू जी फुरमान करते हैं कि -

नैनहु नीद पर द्रिसटि विकार ॥
स्रवण सोए सुणि निंद वीचार ॥
रसना सोई लोभि मीठै सादि ॥
मनु सोइआ माइआ बिसमादि ॥ 1 ॥
इसु ग्रिह महि कोई जागतु रहै ॥
साबतु वसतु ओहु अपनी लहै ॥ 1 ॥ रहाऊ ॥
सगल सहेली अपनै रस माती ॥
ग्रिह अपुने की खबरि न जाती ॥
मुसनहार पंच बटवारे ॥
सूने नगरि परे ठगहारे ॥ 2 ॥ अंग - 182

आप इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

धारना - पंजाँ चोरा ने लुट लिआ जग सारा,
लुटिआ ना जाईं गाफला।

इन्होंने तो किसी को भी छोड़ा नहीं है। ये किस प्रकार से लूटते हैं, इसे मैं एक उदाहरण के माध्यम से प्रस्तुत करता हूँ।

बाबा फरीद जी, अपने मुरीदों के साथ बाजार में से चले जा रहे हैं। एक दरवाजे के पास से, एक बहुत ही दर्दनाक आवाज आई। उस आवाज को सुनकर आप बहुत ही द्रवीभूत हो गए और कहने लगे, न जाने कौन इतना दुखी है, हमें इनकी यथासम्भव मदद करनी चाहिए। बाबा फरीद जी ने दरवाजा खटखटाया और जब कई बार खटखटाया तो अन्दर से एक महिला बहुत ही क्रोधित अवस्था में, जिसने अपने हाथ में हंटर पकड़ा हुआ था, बाहर निकली। वह बहुत ही अभिमान सहित महात्मा के सामने आई तथा क्रोधावेश में बोली, क्या बात है? दरवाजा क्यों खटखटा रहे हो?

बाबा फरीद जी कहने लगे, बेटी! यह रोने की आवाज कैसी आ रही है? आवाज बहुत ही दर्दनाक है?

वह कहने लगी, दरवेश साईं! घरेलू मामलों में दखल देकर तुमने क्या लेना है?

बाबा जी कहने लगे, बेटी! यदि कोई उसकी गलती है तो बताओ? यदि कोई व्यक्ति गलती भी कर दे तो भी इतनी बेरहमी से तो नहीं मारना चाहिए? तुमने तो उसे हंटर मार-मार कर पागल कर दिया है? क्या बात है? वह कहने लगी, तुम दो दरवेश हो, तुमने क्या लेना है? तुम इन बातों को क्या जानो?

वह बोली, मैंने इसे सुर्मा रगड़ने के लिए दिया था, जिसके द्वारा मैंने अपनी आँख की धार बनानी थी। तुम दरवेश हो, तुम्हें इन बातों की जरा सी भी समझ नहीं है। सुर्मे के द्वारा मेरा रूप बहुत ही सुन्दर बनना था लेकिन उस सुर्मे के अन्दर मोटे कण रह गए जिसकी वजह से मेरी आँख में पानी आ गया। यह देखो मेरी आँख की धार खराब हो गई है। यही कारण है कि मैं इसे सबक दे रही हूँ ताकि यह भविष्य में ऐसी गलती न करे।

बाबा फरीद जी कहने लगे, बेटी! यह रूप तो सदा के लिए रहता नहीं है। इस प्रकार से फुरमान है -

धारना - धन जोबन फुलाँ दीआँ बाड़ीआँ,
खिड़ीआँ ना सदा रहिणीआँ।

धनु जोबनु अरु फुलड़ा नाठीअड़े दिन चारि ॥
पबणि केरे पत जिऊ ढलि ढुलि जुंमणहार ॥
रंगु माणि लै पिआरिआ जा जोबनु नऊ हुला ॥
दिन थोड़े थके भइआ पुराणा चोला ॥ अंग - 23

बाबा जी कहने लगे, बेटी! तुम इसे क्यों मार रही हो? यह जवानी कहीं हमेशा रहा करती है?

वह बोली, बाबा जी! तुम अपने उपदेशों को अपने पास रखो। हम तुम्हारे ग्राहक नहीं हैं। हमारी जवानी के तो हजारों ग्राहक हैं, तुम इस बात को क्या जानो?

बाबा जी चुप करके चले गए कि इस महिला को समझ ही नहीं है। यह तो पशु वृत्ति की महिला है। समय अपनी चाल से चलता रहा। काफी समय बीतने के बाद एक दिन आप पुनः अपने मुरीदों के साथ चले जा रहे हैं। आपकी वृत्ति अन्तर्ध्यान मुद्रा में पहुँची हुई है। आपने अचानक क्या देखा कि एक छोटी सी कंटीली झाड़ी के ऊपर एक खोपड़ी लटक रही है। उस खोपड़ी का गर्दन से ऊपर का हिस्सा सारा मुँह भी है, आँखें भी हैं, कान भी हैं, नाक भी है (हड्डियों में उनके सुराख हैं) लेकिन उनके अन्दर पक्षियों ने अपने घोंसला बनाया हुआ है और उस घोंसले में से छोटे-छोटे बच्चे अपनी

चोंचों को बाहर निकाल रहे हैं। बाबा फरीद जी ने अन्तर्ध्यान होकर देखा कि किसी अभागे व्यक्ति की यह खोपड़ी है? आप हैरान हो गए कि यह तो उसी महिला की खोपड़ी है जिसने हमारी बात ही नहीं सुनी थी। आप कहने लगे, बेटी! तुमने उस समय हमारी बात नहीं मानी और अब बताओ तुम्हारी कैसी दशा हो गई है?

धारना - जिहड़ीआँ क्जल रेख ना सी सहिंदीआँ,
पंछीआँ ने पा लए आलणे।

बताओ! उस दिन तुमने हमारी नसीहत को नहीं माना था। तुम उस समय उस दासी को मार रही थी, अब बताओ तुम किसे मारोगी? आज तो ये छोटे-छोटे पक्षी तुम्हारी उन्हीं आँखों में से अपनी चोंच को बाहर निकाल कर देख रहे हैं। कहाँ गया तुम्हारा यौवन? तुम्हें तो तुम्हारा यौवन ही खा गया-

राजु मालु रुपु जाति जोबनु पंजे ठग ॥
एनी ठगीं जगु ठगिआ किनै न रखी लज ॥

गुरू जी कहते हैं कि यह व्यक्ति निरन्तर ठगा जा रहा है। इसे एकाध ठग ही नहीं ठग रहा है बल्कि सारे ही ठग इसे पूरे जोर से ठग रहे हैं। यदि तुम येन-केन-प्रकारेण बच सकते हो तो बच जाओ -

अब मन जागत रहु रे भाई ॥
गाफलु होइ कै जनमु गवाइओ चोरु मुसै घरु जाई ॥
1 ॥ रहाउ ॥
पंच पहरुआ दर महि रहते तिन का नही पतीआरा॥
अंग - 339

जो तुम्हारी आँखें हैं, कान हैं, यानि कि तुम्हारे ये जो पाँच पहरेदार हैं, ये तुम्हारे मित्र नहीं हैं बल्कि ये तो तुम्हारे दुश्मनों के साथ मिले हुए हैं -

संगि सहाई सु आवै न चीति ॥
जो बैराई ता सिऊ प्रीति ॥
बलूआ के ग्रिह भीतरि बसै ॥
अनद केल माइआ रंगि रसै ॥
दिड़ु करि मानै मनहि प्रतीति ॥
कालु न आवै मूड़े चीति ॥
बैर बिरोध काम क्रोध मोह ॥
झूठ बिकार महा लोभ ध्रोह ॥
इआहू जुगति बिहाने कई जनम ॥
नानक राखि लेहु आपन करि करम ॥ अंग - 268

गुरू जी कहते हैं कि तुम इन पर जरा सा भी विश्वास मत करो -

पंच पहरुआ दर महि रहते तिन का नही पतीआरा ॥

ये अब तुम्हारे मित्र नहीं हैं, बल्कि ये तो तुम्हें ही गिराने में लगे हुए हैं। तुम्हें तो खबरदार हो जाना चाहिए। तुम्हारे अन्दर जो दिव्य नेत्र हैं, दिव्य कान हैं, ये तुम्हें महानन्द में ले जाएँगे, इसलिए तुम्हें इनके साथ मित्रता करनी चाहिए -

चेति सुचेत चित होइ रहु तउ लै परगासु ऊजारा ॥
नऊ घर देखि जु कामनि भूली बसतु अनूप न पाई ॥
कहतु कबीर नवै घर मूसे दसवैं ततु समाई ॥
अंग - 339

सारे नौ के नौ घर लूटे हुए हैं। जहाँ पर तत्व की बात मौजूद थी, वहाँ पर यह नहीं पहुँच पाया है। कहते हैं कि सारे दरवाजे बन्द हो गए हैं, वचनों पर भरोसा नहीं आता है। मन मानता नहीं है कि अब आगे का सफर कैसे किया जाए। इस प्रकार से हमारे मार्ग में बहुत बड़ी मुश्किल बन गई है।

पिछले दीवान में मैंने इन तथाकथित दरवाजों में से निकलने के लिए राजयोग की व्याख्या की थी। वह रुकावट कौन सी है? वह रुकावट वह है जिसके बारे में हम जिक्र कर रहे हैं।

अतः वह जो लाहौर का प्रेमी है, जिसका नाम सुजान राए है और जो श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के दरबार का कवि है, ने बातों-बातों में गुरू जी का प्यार, उसके हृदय में बसा दिया है।

उसने उसके मन में यह बात बैठा दी कि भद्रपुरुष! यदि तुम इस संसार भवजल से पार होना चाहते हो तो गुरू दशमेश जी के बिना अन्य कोई भी समर्थ गुरू नहीं है। बस तुम निश्चय धारण करके उनके ऊपर प्रतीति ले आओ। निःशंक रूप से तुमने उनके दर्शन नहीं किए हैं, लेकिन जब तुम उनके दर्शन करोगे तो फिर तुम्हें ये सारी बातें सच्ची ही लगेंगी। उनके चरणों में जाओ, उनके उपदेश की कमाई करो, फिर तुम इस संसार सागर को पार कर जाओगे। फिर जिन चीजों की तुम्हें तलाश है वे न केवल तुम्हारे पास ही आएँगी, अपितु फिर तो तुम्हारे पास इतनी दौलत आ जाएगी कि -

खावहि खरचहि रलि मिलि भाई ॥
तोटि न आवै वधदो जाई ॥ अंग - 186

फिर तुम न केवल स्वयं ही तृप्त होओगे बल्कि फिर तो तुम सारे संसार को ही तृप्त कर दोगे। अतः इस प्रकार के उनके पारस्परिक वचन होते रहे। अब समय अनमुति प्रदान नहीं कर रहा है, इसलिए अब यहीं पर समाप्त करता हूँ।

बाबाणियाँ कहानियाँ

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक सितम्बर, अंग - 21)

राजा जनक ने सारी सभा में घोषणा की कि हे श्रेष्ठ महापुरुषो! संयोग वश आप सभी मिथिला पुरी में दर्शन दे रहे हो। मैं गुरू धारण करना चाहता हूँ पर मेरा गुरू वही हो सकता है जो एक पैर घोड़े की रकाब में डालने के बाद जितना समय दूसरा पैर दूसरी रकाब में डालने में लगता है, जो इतने समय में मुझे ज्ञान करवा देगा, मैं उसे गुरू धारण करूँगा। उस समय सारे ऋषि मुनि हैरान हो गए कि ज्ञान की अवस्था तो बहुत कठिन परिश्रम के बाद प्राप्त हुआ करती है। यदि ज्ञान का पूरी तरह से अधिकारी न हो तो ज्ञान अनाधिकारी को कोई फल नहीं देता। पर राजा तो 10 पलों (क्षणों) का भी समय नहीं देता, इसे ज्ञान कैसे हो सकता है। राजा जनक ने प्रार्थना की कि यह सिंहासन मैंने गुरू के लिए लगाया है, वह महापुरुष इस पर आकर सुशोभित हो जाये। सभी ओर सन्नाटा छा गया, कोई भी महापुरुष गुरू पदवी प्राप्त करने के लिए अपने आसन से न उठा क्योंकि ज्ञान बातों से प्राप्त नहीं हुआ करता। यह जन्म जन्मातरों की कठिन कमाई के बाद ऐसी अवस्था हुआ करती है जहाँ भ्रमों का नाश होता है तथा इस जीव को अपने मूल स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है फिर इसे सूझ आाती है -

मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु।
अंग - 441

सभी ने सोचा कि राजा जनक लम्बी अज्ञान अवस्था में दुखी हो रहा है। यह जीव की अधम अवस्था में से होता हुआ अपने आपको पाँच तत्वों की देह मान रहा था, इसे कैसे तत्व ज्ञान का वरदान दिया जाये। जैसा कि फ़रमान है-

राम पदारथु पाइकै कबीरा गांठि न खोल्ह।
नही पटणु नही पारखू नही गाहकु नही मोलु॥
अंग - 1365

जब कोई भी गुरू आसन की ओर उठ कर न आया तो राजा जनक ने कहा कि भारत वर्ष में तत्व वेत्ताओं का अभाव हो गया है कि कोई ऐसा महात्मा भारत वर्ष में नहीं रहा जो अज्ञान दूर करने की समर्थ रखता है? यह वचन सुनकर अष्टावक्र ने सभी की ओर देखा और जब उसे निश्चय हो गया कि अब कोई भी नहीं उठ रहा, तब उस समय वह स्वंय उठकर मंच पर आया और उसने हुक्म दिया कि राजन! घोड़ा मंगाओ। राजा ने घोड़ा मंगाया तथा जब वह उस पर चढ़ने लगा तो अष्टावक्र जी ने कहा कि राजन! पहले गुरू दक्षिणा दो फिर मैं तुझे तत्व ज्ञान का उपदेश दूँगा। पूछने पर अष्टावक्र ने कहा कि तू मुझे अपना सर्वस्व अर्पण कर दे। यह सुनकर राजा को बहुत खुशी हुई। उसने संकल्प करके प्रतिज्ञा की कि महाराज! मेरा मन, तन, धन, सर्वस्व आपका है। प्रतिज्ञा करने के बाद मुनि के आगे खड़ा हो गया। उस समय अष्टावक्र जी ने कहा अब मन तूने मुझे दे दिया है इसलिए अब मन के साथ कोई भी संकल्प मत करना, तन भी तूने मुझे दे दिया है इस तन के साथ लगी कर्मेंद्रियों तथा ज्ञानेद्रियों से भी तू कोई काम नहीं लेगा, धन भी सारा मेरा ही है। यह संकल्प करने के बाद राजा जनक घोड़े पर चढ़ने लगा। अष्टावक्र ने कहा कि राजन! तुझे संकल्प कैसे हुआ, मन तो तू मुझे दे चुका है? मन के साथ ही निर्णय शक्ति जिसे बुद्धि कहते हैं और चित्त जो चितवना करता है, वह तू मुझे दे चुका है, तू घोड़े पर कैसे चढ़ने लगा था? उस समय राजा को समझ आ गई, क्षमा मांगी। राजा जनक खड़ा हो गया। राजा जनक न हिलता है, न कहीं देखता है, न कोई फुरना करता है।

थोड़े समय के बाद एक ब्राह्मण ने आकर पुकार की और प्रार्थना की कि हे राजन! मेरी रक्षा करो, मैं बहुत दुखी हूँ। पहले तो राजा ने जब यह सुना तो उसके मन में दया आई, विचार आया कि मैं इसे पूछ लूँ कि इसे क्या दुख है

और इसकी सहायता करके इसका दुख दूर करूँ। फिर विचार आया कि यह तन, मन तो गुरू को दे दिया है, धन भी गुरू को दे दिया है और गुरू की आज्ञा है कि मेरी किसी भी वस्तु से तू कोई भी कार्य नहीं लेगा, बुत बन कर खड़ा रह। इसलिए मुझे गुरू की आज्ञा पालन करनी चाहिए और चुप करके खड़ा रहा। ब्राह्मण विलाप करता रहा तथा अपनी दर्दनाक कहानी राजा जनक को बहुत दुखी शब्दों में वर्णन की। फिर वह कहने लगा कि हे राजन! तुझे मेरी इतनी दर्दनाक हालत को देखकर भी तरस नहीं आता है, तू बुत बनकर क्यों खड़ा है? मेरे बच्चे तड़फ रहे हैं - भूखे प्यासे, तू मेरी एक भी बात नहीं सुन रहा। राजा का मन किया कि मैं खजान्ची को कहकर इसकी सहायता करूँ। फिर विचार आया कि धन तो मैंने गुरू को दे दिया है, तन के द्वारा भी मैं इस ब्राह्मण की मदद नहीं कर सकता। मैं तो सर्वस्व गुरू के अर्पण कर चुका हूँ। अब मेरी हालत तो पूरी तरह से कंगाल जैसी है। मन ही मन सोचने लगा कि मैंने गुरू के साथ यह संकल्प करके बहुत बड़ी गलती की है। धिक्कार है मुझे कि मैं इसकी कोई सहायता नहीं कर सकता। जब ब्राह्मण को कोई उत्तर न मिला तो क्रोध में आकर उसने अति कठोर वचन राजा को कहने शुरू कर दिए। यह सुनकर भी राजा उसी प्रकार मिट्टी के बुत की तरह खड़ा रहा। ब्राह्मण ने ऐसा क्रोध दिखाया कि जिसे महसूस करके सारी सभा काँप गई और डर गई कि यह कोई श्राप न दे दे जिससे राजा फिर दुखों से भरा जीवन व्यतीत करे। पर राजा को क्या चिन्ता थी? जो कुछ भी था अपना सभी कुछ गुरू अष्टावक्र के चरणों में भेंट कर चुका था। राजा निरसंकल्प होकर खड़ा रहा। यह देखकर अष्टावक्र बहुत खुश हुआ और राजा को सही अधिकारी जानकर कहने लगा कि मेरे धन में से इस ब्राह्मण को देकर सहायता कर। राजा ने कहा कि सभी चीज़ें तो मैं तुझे दे चुका हूँ। मेरा तो कोई अधिकार ही न रहा, न ही मुझे किसी वस्तु के साथ ममता रही है। अष्टावक्र ने उस ब्राह्मण को धन देकर सुखी कर दिया। राजा जनक को सम्बोधन करके अष्टावक्र कहने लगा कि राजन तू कौन है? मुनि कहने लगे कि जनक के सिर ऊपर हाथ रख कर, बता कि जनक कौन है? राजा कुछ भी न बता सका क्योंकि यदि बाजू पर हाथ रखता है तो वह बाजू है, छाती पर हाथ रखता है तो वह छाती है यदि सिर पर हाथ रखता है तो वह सिर है, यदि पेट पर हाथ रखकर कहता है कि यह राजा जनक है, तो वह पेट है। राजा कुछ भी न दिखा सका कि जनक क्या है? उस समय मुनि ने कहा जैसे तू कहता है कि मैं जनक हूँ, पर दिखा नहीं सकता, इस प्रकार जनक कोई चीज़ है तो दिखा? इसी प्रकार सभी लोक, जगत, संसार दुनियाँ (**world**) कहते हैं, वह दिखा नहीं सकते। इसलिए जगत है ही नहीं, कहने लगे राजा जनक! जैसे आकाश एक ही है पर उपाधि के कारण किसी बर्तन में जो खाली जगह (**space**) है उसे घटा आकाश कहते हैं, जो मकान के अन्दर खाली जगह है उसे मटा आकाश कहते हैं, जो आसमान तथा बादलों के मध्य खाली जगह है उसे मेघा-आकाश कहते हैं पर जब बादल हट जाते हैं और आसमान साफ हो जाता है एक ही आकाश रह जाता है। जिसे महा आकाश कहा जाता है -

सहस घटा महि एकु आकासु।
घटि फूटे ते ओही प्रगासु। *अंग - 736*

यह आकाश की बाँट केवल कल्पना मात्र है सत्य रूप में केवल एक ही आकाश अखण्ड रूप में परिपूर्ण है। इसी प्रकार माया तथा अविद्या की उपाधि के सम्बन्ध के कारण तू सत-चित्त आनन्द परिपूर्ण ब्रह्म को कहीं जनक कहता है, कहीं अष्टावक्र कहता है, कहीं अनेक नामों से इसे सम्बोधन करता है, ये सभी कल्पित हैं, झूठे हैं, तत्व वस्तु केवल सत्त, चित्त, आनन्द है, जो अखण्ड रूप में सभी जगह परिपूर्ण है, उसमें कोई भी विकार नहीं है, वह जन्म मरण से रहित है, कोई चीज़ उसे पकड़ नहीं सकती, वह सभी में होता हुआ भी असंग है। इस प्रकार तू आत्म स्वरूप है, जनक आदि तेरे अनेक नाम हैं तू अपने अखण्ड रूप में स्थित है। तो राजा जनक प्राण, इन्द्रियों, मन, चित्त, बुद्धि गुरू की जानकर इनसे असंग होकर जब अफ़ूर अवस्था में लीन हो गया, उस अफ़ूर अवस्था में से सहज अवस्था की समाधि लग गई और परम आनन्द को प्राप्त कर लिया। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं -

सहज समाधि लगी लिव अंतरि
सो रसु सोई जाणै जीउ॥ *अंग - 106*

'चलता'

नानक से अखड़ीआं बिअंनि।।
जिनी डिसंदो मा पिरी।। (अंग - 577)

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक सितम्बर, पृष्ठ - 31)

जिन्होंने लेखा किया है। डा. स्टीफन जिनका जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया था और वे काल गर्त में समा गए थे। उन्होंने आकाश पर एक पुस्तक लिखी है उसने परमात्मा को तो छोड़ दिया और केवल प्रकृति को ही सामने लेकर बात की। वह कहता है कि जब प्रकृति छोटी होती है तो वह कितनी छोटी हो जाती है, इस सम्बन्ध में उसने एक गणना करने की कोशिश की। उसने दशमलव लगाने के बाद अस्सी शून्य लिखे और उसके बाद एक लिखा तथा उसके आगे लिख दिया **infinity** (असीम)। **Infinity** का तात्पर्य होता है कि चाहे एक करोड़ वर्षों तक शून्य लगा लगाकर एक लगा दो लेकिन यदि फिर भी उसकी कोई सीमा न हो तो फिर वह असीम है। जब उसने प्रकृति के विस्तार की बात लिखी तो उसने एक लिखने के बाद अस्सी बार शून्य लिखा और फिर असीम लिख दिया। उसके द्वारा यह गणना करने का तात्पर्य था कि प्रकृति का छोटा रूप कितना हो सकता है न तो इसकी कोई सीमा है और न ही इसके बड़े रूप की ही कोई सीमा है। गुरू महाराज जी कहते हैं -

सूछम ते सूछम कर चीने
ब्रिधन ब्रिध बताए॥
भूम अकास पताल सभै सजि
एक अनेक सदाए।   शबद हजारे पातशाही 10

जो कुछ भी दिखाई पड़ रहा है, यह सब परमात्मा ही है -

पसरिओ आपि होइ अनत तरंग ॥   अंग - 275

वह स्वयं ही विस्तार में गया हुआ है -

पसरिओ आपि होइ अनत तरंग ॥   अंग - 275

इसे कोई भी बता नहीं सकता है। गुरू जी कहने लगे, सन्तजनो! इसका कोई भी अनुमान लगा पाना असम्भव ही है लेकिन अनुमान के तौर पर मैं विनती करता हूँ कि पानी, मिट्टी से दस गुणा सूक्ष्म है। आग, पानी से सौ गुणा सूक्ष्म है। हवा, आग से सौ गुणा सूक्ष्म है और हवा से लाखों गुणा सूक्ष्म है - आकाश। आप आकाश का एक बाँट बना लो। आप यह बना लो कि सुमेर पर्वत जिसके बारे में कहते हैं कि वह चालीस हजार मील धरती में गहरा है, चालीस हजार मील चौड़ा है और चालीस हजार मील दूसरी तरफ को है यानि कि वह चालीस हजार मील प्रत्येक तरफ को है। गुरू जी कहते हैं कि इसका एक बाँट बना लो। उसके मुकाबिले में एक यह जो विचार है इसे इस प्रकार से समझ लो कि आकाश तो है इतना मोटा और जो चेतन तत्व है, वह इतना छोटा है। यहाँ पर यह भी बता देना तर्कसंगत होगा कि यह सारा हिसाब किताब मैंने आपके समक्ष जो प्रस्तुत किया है, यह मानवीय बुद्धि के अनुसार है, जबकि हकीकत जो है, वह इससे भी कहीं आगे की बात है। अब वह जो सूक्ष्म तत्व वाहिगुरू है, वह दिखाई तभी पड़ता है जिस समय हमारी आन्तरिक आँख खुल जाए। दूसरी तरफ महाराज जी कथन करते हैं कि ऐ प्रेमीजन! तुम्हें ऐसा यह शरीर प्राप्त हो गया है जिसके अन्दर अत्यन्त विचित्र चीजें पड़ी हुई हैं लेकिन तुम उन्हें देख व समझ ही नहीं पाते हो। इसका मुख्य कारण यह है कि तुम्हें माया ने अपने प्रभाव में ले रखा है और तुम लूटे जा रहे हो -

इसु देही अंदरि पंच चोर वसहि
कामु क्रोधु लोभु मोहु अहंकारा ॥
अंम्रितु लूटहि मनमुख नही बूझहि
कोइ न सुणै पूकारा ॥   अंग - 600

तुम तो बहुत बुरी तरह से लूटे जा रहे हो। तुम्हें तो पता ही नहीं है कि तुम्हारे अन्दर क्या है -

नऊ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु ॥
देही महि इस का बिस्रामु ॥
सुंन समाधि अनहत तह नाद ॥
कहनु न जाई अचरज बिसमाद ॥   अंग - 293

इस प्रकार के नाद हैं और उनकी इस प्रकार की मन्त्रमुग्ध करने वाली धुने हैं कि जिनका अनुमान लगा पाना

मुश्किल ही नहीं वरन् असम्भव ही है। वह इस प्रकार की धुन हमारे अन्दर विद्यमान है जिसे पाने के लिए देवते भी लालायित रहते हैं। अतः -

सुरि नर मुनि जन अंम्रितु खोजदे
सु अंम्रितु गुर ते पाइआ ॥ *अंग - 918*

हम तो बाहरी अमृत को ही अन्तिम अमृत कह देते हैं जिसे कि पांच प्यारे तैयार करते हैं। जब कहीं कोई तर्कवादी हमारे समक्ष सवाल खड़े करता है तो फिर हम अपनी गर्दनें झुका लेते हैं। इसका कारण यह है कि हम गलत बातें कह गए हैं। अपने लोगों को तो हम कह देंगे लेकिन यदि हम इस बात को अन्य लोगों से कहेंगे तो फिर हम उसे सिद्ध कैसे कर पाएँगे? अब सवाल खड़े करने के लिए तो सारी दुनिया ही तैयार है। दरअस्ल हम बात की गहराई को नहीं समझते हैं, आन्तरिक विचार की बात को नहीं समझते हैं। जो असली अमृत है वह तो हमारे अन्दर विद्यमान है। यह विद्यमान भी केवल मनुष्य के अन्दर ही है, अन्य किसी के भी अन्दर यह मौजूद नहीं है। वह अमृत देवजनों को भी नहीं मिल पाता है। सवाल उत्पन्न होता है कि फिर वह अमृत मिलता किसे है? दरअस्ल वह अमृत उसी को मिल पाता है, जिसके ऊपर समर्थ गुरू कृपा कर दे और अपनी कृपा के द्वारा इस अमृत कुण्ड पर हमें पहुँचा दे अन्यथा वह मिल नहीं पाया करता है। अतः वह सारी चीजें हमारे अन्दर पड़ी हुई हैं। गुरू जी फुरमान करते हैं कि -

इहु सरीरु सभु धरमु है
जिसु अंदरि सचे की विचि जोति ॥
गुहज रतन विचि लुकि रहे
कोई गुरमुखि सेवकु कढै खोति ॥ *अंग - 309*

निःशंक रूप से इस अमृत को कोई भी प्राप्त कर सकता है लेकिन सभी नहीं कर सकते हैं क्योंकि सबको तो विश्वास ही नहीं है कि उनके अन्दर क्या है। वे तो इस शरीर के बाहरी रंग-रूप को ही देख पाते हैं और जिनके बारे में गुरू जी फुरमान करते हैं कि -

बिसटा असत रकतु परेटे चाम ॥
इसु ऊपरि ले राखिओ गुमान ॥ 3 ॥
एक वसतु बूझहि ता होवहि पाक ॥
बिनु बूझे तूं सदा नापाक ॥ 4 ॥ *अंग - 374*

वास्तविकता तो यह है कि इस शरीर के अन्दर परमात्मा ने अपना आसन लगाया हुआ है -

काइआ अंदरि आपे वसै अलखु न लखिआ जाई ॥
मनमुखु मुगधु बूझै नाही बाहरि भालणि जाई ॥
अंग - 754

इस प्रकार मैं यह विनती कर रहा था कि यदि शरीर की सभी इन्द्रियों से काम लिया जाए तो बहुत जल्दी ही और इसी उम्र के अन्दर ही हम सफलता तक पहुँच सकते हैं। बस हमारे अन्दर दृढ़ लगन होनी चाहिए। गुरू महाराज जी ने इस प्रकार का मार्ग हमारे लिए प्रस्तुत किया है जिसे जानकर हम हैरान हो जाते हैं। अगस्त 1995 का मैगजीन आने वाला है, उसके अन्दर मैंने डिकटेट करवाया है कि पिछले समयों में किस प्रकार से भजन करते थे और किस प्रकार से सुरति को चढ़ाया करते थे। उसमें यह भी छोटा सा इशारा किया है कि गुरू महाराज जी ने इसमें कुछ सुधार करके हमें बहुत ही सरल मार्ग बतला दिया है। यदि हम उसे न समझे तो यह हमारे भूल है कि इतना सरल मार्ग होने का बावजूद भी हम उसे समझते नहीं हैं। अतः यदि हम अपनी सारी इन्द्रियों को काम पर लगा दें तो फिर यह सारा कार्य बहुत ही सरल हो जाता है। जिस प्रकार यदि हम दस नालियों वाली गेहूँ बोने की मशीन के द्वारा अपने खेत को बोएँ तो फिर सारा खेत आसानी से बोया जाता है। ठीक इसी प्रकार से यदि हम सारी इन्द्रियों को सही प्रयोग करें तो फिर हमें इसी उम्र के अन्दर-अन्दर प्राप्ति हो सकती है। इसके लिए आवश्यक है कि हमारी शीश में नम्रता हो, अहंकार न हो क्योंकि अभिमानी शीश किसी के आगे झुकता नहीं है। गुरू जी कहते हैं कि जो शीश किसी के आगे झुकता नहीं है, उसे क्या किया जाए? क्योंकि वह तो पापों में ही प्रवृत्त रहता है -

जो सिरु साई ना निवै सो सिरु कीजै काँइ ॥
अंग - 1381

उसका क्या किया जाए?

कुंने हेठि जलाईऐ बालण संदै थाइ ॥ *अंग - 1381*

फिर तो आग जलाने वाली लकड़ी की जगह पर उसे लगाकर जला डालना चाहिए। जो झुकता नहीं है वह शरीर दोषी है लेकिन जो शरीर झुकता है उसे कितना फल प्राप्त होता है इस सम्बन्ध में गुरू महाराज जी इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

धारना - जिहड़ा लगे ना गुराँ दे चरनीं,
ध्रिग तेरा सीस बंदिआँ।

भाई गुरदास जी जिन्होंने कवित्त, सवैये तथा वारों की रचना की है और जिनकी वाणी को श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी कुंजी होने का खिताब हासिल है क्योंकि आपने गुरमति सिद्धान्तों को बहुत ही सरल बोली के अन्दर प्रकट करके हमें सही मार्ग दिखाया है, फुरमान करते हैं कि -

ध्रिगु सिरु जो गुर ना निवै गुर लगै न चरणी॥
भाई गुरदास जी, वार 27/10

यदि किसी को सौ बार अपशब्द कह जाएँ और एक बार ही धिक्कार कह दिया जाए तो वह बराबर हो जाता है। इतनी जबरदस्त रियायत केवल मस्तिष्क झुकाने वाले को प्राप्त हो जाती है। लेकिन अहंकारी व्यक्ति तो इतना भी नहीं कर पाता है और उसकी गर्दन अकड़ी ही रहती है।

श्री गुरू दशमेश जी सजे हुए दरबार के अन्दर बिराजमान हैं, संगत आकर नमस्कार कर रही है और महाराज जी आशीषें देते जा रहे हैं। पीर सलारदीन, जो कि कभी कभी गुरू जी के पास आकर बैठ जाया करता था, आपके पास बैठा हुआ है। वह कहने लगा, महाराज जी! अल्लाह एक है या दो? गुरू जी बोले, क्या बात? पीर कहने लगा, लोग यहाँ पर आकर मस्तिष्क झुकाते हैं और आप आशीषें देते जाते हो। अल्लाहताला ने जो लिखा है वह ठीक है अथवा जो आप करते हो वह ठीक है।

गुरू जी कहने लगे, पीर जी! वह तो ठीक था बाहर-बाहर लेकिन जब गुरू के द्वार पर पहुँच कर कोई शीश झुकाता है तो जीव के उल्टे लेख सीधे हो जाते हैं। गुरू की आशीष उन्हें बदल दिया करती है। जिस प्रकार से यदि हम गेहूँ का बीज बो दें लेकिन उसके बाद उस पर हल्की सी वर्षा पड़ जाए तो फिर दाने तो उग पड़ेंगे लेकिन मिट्टी की पपड़ी बन जाने के कारण वे दाने बाहर नहीं निकल पाएँगे ठीक इसी प्रकार से पुण्य कर्म जो हैं, वे उग तो पड़ते हैं लेकिन सतगुरू जी की कृपा के बिना उनमें से बहुत सारे बीज बीच में ही सूख जाते हैं।

गुरू जी ने पीर जी को कहा, पीर जी! इस मोहर पर क्या लिखा है उसे पढ़ो। पीर जी बोले, गुरू जी! इसे तो पढ़ पाना बहुत कठिन है। गुरू जी ने पैड पर मोहर को लगाया और कागज पर लगा दी और कहा, अब पढ़ो। पीर ने कहा अब तो पढ़ना कोई मुश्किल नहीं है।

गुरू जी ने कहा इसी प्रकार से जो लेख जीव के मस्तिष्क पर उल्टे लिखे होते हैं, वे जब गुरू जी की पैड पर लग जाते हैं, तो वे उसी समय सीधे हो जाया करते हैं। इस प्रकार से गुरू को नमस्कार करने का बहुत बड़ा फल हुआ करता है।

भारतवर्ष के अन्दर एक बहुत बड़ा ऋषि हुआ है जिसका नाम मारकण्डा था। आपका जन्म एक राजा के घर में हुआ। ज्योतिषविदों ने बताया कि राजन्! पुत्र तो हो गया, ठीक है लेकिन इसकी उम्र 11 साल 11 महीने 11 दिन की ही होगी। हमारी यह सलाह है कि इस बालक को घर से दूर जंगल में पाला जाए ताकि राजा को इससे मोह न हो जाए क्योंकि इसने छोटी उम्र में ही परलोक सिधार जाना है। अन्य पुत्र तुम्हारी किस्मत में हैं, वे चिरंजीवी हैं, वे तुम्हारे पास ही रहेंगे। राजा ने उनकी सलाह मान ली और बच्चे का लालन पालन राज महल से दूर करना शुरू कर दिया। राजा के राज्य के अन्दर एक किला था, वहाँ पर उस बच्चे के पालन-पोषण का पूरा प्रबन्ध कर दिया गया। दाइयां भेज दी गईं और पूरे शाही ढंग से प्रबन्ध हो गया। ग्यारह साल ग्यारह महीने बीतने के बाद जब ग्यारह दिन शेष रह गए तो इस बच्चे को सम्भालने वाली जो दाई थी, वह रोने लग पड़ी क्योंकि उसे यह माता कहा करता था।

वह कहने लगा, माता! क्या कारण है कि आप रो रहे हो? क्या आप रोने का कारण मुझे बता सकती हो?

वह बोली, बेटा! मैं तुम्हारी माता तो नहीं हूँ लेकिन माता से कम भी नहीं हूँ। मैं इतनी देर तक तुम्हारे साथ रही हूँ, इसलिए मुझे तुमसे बहुत प्यार हो गया है और तुम्हारा जाना मेरी जिन्दगी में अन्धकार उत्पन्न कर देगा। वह बोला, मैंने चला जाना है?

वह बोली, हाँ, अब तुम्हारे केवल ग्यारह दिन ही शेष बचे हैं और इसीलिए तुम्हारा पालन-पोषण इस किले के अन्दर किया गया है ताकि राजा को तुम्हारे जाने के दुख का प्रत्यक्ष सामना न करना पड़े। अतः मुझे पता है कि अब थोड़े दिनों बाद ही तुमने इस संसार से चले जाना है।

वह लड़का अपनी उस तथाकथित माँ से बोला, माता! कोई उपाय भी है? क्योंकि यदि कोई बीमारी होती है तो फिर उसका इलाज भी तो होता है?

वह कहने लगी, बेटा! एक उपाय तो है। उपाय यह है कि किसी ज्ञानवान तत्ववेत्ता महापुरुष के दर्शन हो जाएं और वे वचन कर दें, फिर तुम्हें आयु प्राप्त हो सकती है। वह बोला, माता! फिर तो किसी ऐसे महात्मा की तलाश की जानी चाहिए क्योंकि दिन तो केवल ग्यारह ही रह गए हैं।

आखिर जंगल में तलाश की गई और काफी तलाश के बाद उन्हें पता चल गया कि इसी जंगल में एक बहुत ही उच्च कोटि के महात्मा अपनी मण्डली के साथ रहते हैं। अभी एक दो दिन शेष रह गए थे और बच्चा महात्मा के पास चला गया और उसने जाकर सारे महापुरुषों को नमस्कार करनी शुरू कर दी प्रत्येक महात्मा कह देता है, बेटा! चिरंजीवी हो। आखिर वह बड़े महापुरुषों के पास चला गया और उसने उन्हें भी नम्रतापूर्वक नमस्कार कर दी। महात्मा ने बच्चे की तरफ देखा और उन्होंने सारा हाल अनुभव कर लिया कि इसकी तो आयु ही समाप्त होने वाली है। महात्मा बोले, बेटा! कैसे आए हो?

बच्चा बोला, महाराज जी! मेरी उम्र टूटी हुई है और अब केवल दो दिन शेष रह गए हैं, इसीलिए मैं आपकी चरण-शरण में आया हूँ और आपके चरणों के साथ मैंने अपना माथा लगाया है। आप कृपा करो। महात्मा बोले, बेटा! चिरंजीव हो।

इसके बाद देख लो फिर कितनी बड़ी उम्र वाला मारकण्डा हुआ है?

मारकंडे ते को अधिकाई
जिनि त्रिण धरि मूंड बलाए ॥ *अंग - 692*

वह बहुत बड़ी उम्र वाला हुआ है। महात्मा के चरणों के साथ लगने की कितनी बड़ी बरकत है। जो अपनी अकड़ में तना रहता है उसे तो गुरवाणी धिक्कार ही देती है क्योंकि वह इतनी बड़ी रियायत का लाभ न ले सका। उसके बाद होता है 'लोइण' -

ध्रिगु लोइण गुर दरस विणु वेखै पर तरणी।
भाई गुरदास जी वार, 27/10

जो गुरू का दर्शन नहीं करते हैं, गुरू जी कहते हैं कि वे तो धिक्कारयोग्य नेत्र हैं। वे किसी भी काम के नहीं हैं -

नैण न देखहि साध सि नैण बिहालिआ ॥
करन न सुनही नादु करन मुंदि घालिआ ॥
अंग - 1362

गुरू जी कहते हैं कि जो नेत्र साधू का दर्शन नहीं करते हैं उन्हें तो शरीर से ही बाहर निकाल देना चाहिए उन्हें तो रखना ही नहीं चाहिए।

गुरू छठे महाराज जी जहाँगीर के साथ हैं। खबर आई कि एक बहुत बड़ा शेर जंगल के अन्दर है जो कि किसी भी शिकारी से डरता नहीं है। जहाँगीर बादशाह ने कहा, गुरू जी! अपने लोग चलें? चाहे आप उसे तलवार से मार देना या फिर मैं उसे अपनी तलवार से मारूँगा। जब शेर के पास गए तो शेर इतना जबरदस्त था कि जहाँगीर का हाथी पीछे मुड़ने लग पड़ा और वह पैरों को आगे बढ़ाने की बजाए पीछे की तरफ खींचने लग पड़ा। जो घोड़े पहले परख में से पास हो चुके थे, वे सभी लीद करने लग पड़े, पेशाब करने लग पड़े और पीछे की तरफ मुड़ने लग पड़े। महाराज जी खड़े हैं, लेकिन अन्य सभी पीछे मुड़ने लग पड़े। महाराज जी बोले, जहाँगीर! इसके साथ करो दो-दो हाथ।

जहाँगीर बोला, नहीं महाराज जी! यह मेरे वश से बाहर की बात है। इसके लिए तो मैं आपको भी कहूँगा कि आप भी पीछे हट जाओ। महाराज जी बोले, नहीं, हम तो अब आगे बढ़ेंगे और यह अब हमारा फर्ज है।

उस समय गुरू महाराज जी जैसे ही आगे बढ़े तो शेर ने एकदम से आक्रमण कर दिया। गुरू जी ने एकदम से शेर का काम तमाम कर दिया। जैसे ही उस शेर का प्राणान्त हुआ तो बहुत ही जोरदार प्रकाश हुआ और उसके बाद जोरदार गर्जन हुआ। जहाँगीर बहुत भयभीत हो गया। वह कहने लगा, गुरू जी! यह क्या बात हुई है?

गुरू जी बोले, तुमने यह बात पूछनी है?

उसने कहा, हाँ जी।

गुरू जी ने बुला लिया, आप शेर को बोले, बताओ भाई तुम्हारी क्या कहानी है?

वह कहने लगा, जहाँगीर! मैं तेरा चाचा कासिम बेग हूँ। मैं अकबर के साथ तीसरे गुरू महाराज जी के दर्शन करने गया था। मैंने दर्शन तो कर लिए थे लेकिन मेरे मन में तर्क थी कि यह भी मुसलमान होकर एक हिन्दू के दर्शन करने के लिए आता है जबकि हमारे ग्रन्थ में तो लिखा है कि हिन्दू चाहे कितना भी बड़ा हो, फिर भी वह काफिर ही है। मैंने उनके ऊपर तर्क कर दी। जो मेरा बड़ा भाई अकबर था वह भोजन ग्रहण करने लग पड़ा जबकि मैंने भोजन ग्रहण ही नहीं किया और मैंने अपने डेरे पर आकर ही भोजन ग्रहण किया। मेरा तर्क करना मेरे लिए इतना गलत साबित हुआ कि मेरे पेट में रात में बहुत अधिक दर्द होने लग पड़ा, फलस्वरूप मैं वहीं पर मर गया। तर्क करने का मेरे लिए फल यह हुआ कि मुझे शेर की तामसी योनि मिल गई। इससे आगे की जो बात है उसे तुम गुरू जी से पूछ सकते हो।

गुरू जी कहने लगे, इसने गुरू का दर्शन किया था और गुरू के दर्शनों का फल हमने इस देना था। उसका फल हमने यह दिया है कि हमने इसकी शेर की योनि छुड़ाकर इसे दूसरी तरफ भेज दिया है। अब आप ही देख लो कि दर्शनों का कितना बड़ा फल मिलता है। नि:शंक रूप से उसने तर्क सहित ही दर्शन किए लेकिन फिर भी दर्शनों का फल तो मिलती ही है।

श्री गुरू नानक देव महाराज जी जब अपनी एक उदासी के समय वापिस लौट रहे थे और स्यालकोट में पहुँच गए तो आपने मरदाना जी को कहा, मरदाना! यहाँ पर अपना एक प्रेमी रहता है चलो उसे मिलते चलते हैं।

मरदाना ने कहा, महाराज जी! कौन सा प्रेमी है यहाँ पर?

गुरू जी बोले, भूल गए? यहाँ पर मूला है।

गुरू जी स्वयं ही चल पड़े और उसी गली में पहुँच गए।

उसके घर के सामने खड़े होकर आपने आवाज दी भाई मूला! भाई मूला!

मूले की पत्नी ने आवाज पहचान ली वह कहने लगी, अजी सुनते हो, वही सन्त आ गए जो आपको पहले अपने साथ ले गए थे। वह बोला, मैं कुछ नहीं बोलूँगा अन्यथा वे मुझे पुनः ले जाएँगे। वैसे वह गुरू जी की शक्ति को पहले भी भली भांति देख चुका था जिस समय वह पहले गुरू जी के साथ गया था। उस समय गुरू जी ने उससे कहा था, भाई मूला! यदि तुम आज चार बजे तक अपने घर न पहुँचे तो तुम्हारी पत्नी ने चिता में जल जाना है। बताओ जाना चाहते हो?

वह (मूला) बोला, महाराज जी! हजारों मील दूर बैठे हैं। इतनी जल्दी कैसे जाया जा सकता है?

गुरू जी बोले, वह सब तुम हमारे ऊपर छोड़ दो। वह क्षत्रिय था, कहने लगा, महाराज जी! मैं चला तो जाऊँ लेकिन पास में धन-पदार्थ तो कुछ भी नहीं है। गुरू जी बोले, वह कंकड़-पत्थर पड़े हैं एक अंजुली भर लो। वह अंजुली भर लाया। गुरू जी ने कहा, पहले नेत्र बन्द करो और फिर खोलो। जब उसने कुछ क्षण के लिए नेत्र बन्द किए और उसके बाद खोले तो क्या देखता है कि वह स्यालकोट में अपने घर बैठा हुआ है और वह कंकड़-पत्थर से जो अंजुली भरी थी वह सारा सोना ही सोना था। इस प्रकार की सभी बरकतों को देखने के बाद भी वह पुनः मुकर गया।

वह कहने लगा कि यदि मैं बोल पड़ा तो गुरू जी मुझे ले जाएँगे। मैं कोठड़ी के अन्दर छिप जाता हूँ और तुम कोई बहाना लगा कर उन्हें वापिस भेज दो।

उसकी पत्नी बाहर आई और बोली, महापुरुषो! वे तो यहाँ पर नहीं हैं। गुरू जी बोले, बेटा! महापुरुषों के पास यदि झूठ बोला जाए तो वह झूठ भी सत्य ही हो जाया करता है।

वह पुनः बोली, नहीं महाराज जी! वे तो यहाँ पर हैं नहीं।

गुरू जी बोले, यदि है नहीं तो फिर है ही नहीं। इतना कहने के बाद आप गली की तरफ मुड़ गए। इधर यह (मूला) अन्दर से चीखें मारने लग पड़ा कि मुझे तो खा लिया, मुझे तो साँप ने खा लिया, मुझे साँप ने डस लिया है। बाहर निकाला गया। आस पास से पड़ोसियों को बुलाया गया। वह महिला कहने लगी कि हमसे तो बहुत बड़ी भूल हो गई है। श्री गुरू जी हमारे घर आए थे और मैं उन्हें कह बैठी कि वे तो यहाँ है ही नहीं। उन्होंने तो मुझे इशारा भी किया था कि बेटा! सतगुरू के पास यदि झूठ भी बोला जाए तो भी वह सत्य ही हो जाता है। लेकिन मैं पुनः कह बैठी कि वे तो है नहीं। मूला कहने लगा जल्दी करो, मुझे उठा कर गुरू जी के पास ले चलो। वे उठाकर ले गए, मूले को अभी थोड़ी-थोड़ी सुरति है। गुरू जी कहने लगे, प्रेमीजनो! इसे तो साँप ने डस लिया है। अब तो इसका कुछ नहीं बन सकता है। हम तो अब इसका कुछ नहीं कर सकते हैं। दूसरी बात यह है कि यह गुरू से बेमुख हो गया है। बेमुख होने वाले का तो जन्म लेने ही पड़ते हैं। इसने तो न जाने कितनी निषिद्ध योनियों में पड़ना था लेकिन प्रेमीजनो! अन्त के समय इसे गुरू के दर्शन हो गए हैं, इसलिए इसे दर्शनों का फल हम दसवें स्वरूप में प्रदान करेंगे।

श्री गुरू दशमेश जी आज नांदेड़ में हैं, दोपहर के बारह बजे हुए हैं। गर्मी की ऋतु है। गुरू जी ने छोटी सी बनियान जिसे कि फतुही कहा जाता है, पहनी हुई है। आप एकदम से बरछा लेकर घोड़े पर सवार हो गए। आपके शीश पर छोटी सी दस्तार है। आपने सरपट घोड़ा दौड़ा दिया, आपके घोड़े के सामने एक छोटा सा खरगोश दौड़ा जा रहा है। उस खरगोश ने कई इधर-उधर मोड़ खाते हुए खूब दौड़ लगाई लेकिन महाराज जी ने अपने बरछे से उसे पिरो दिया और साथ ही कहने लगे, अब कहाँ जा रहे हो? यदि तुम भूल गए हो, हमें तो याद है। कोई समय था जब तुम हमारे साथ उदासी पर गए थे, लेकिन उसके बाद तुम बेमुख हो गए।

सिंहों ने कहा, महाराज जी! यह कौन है?

गुरू जी ने कहा, यह तो मूला है।

सिंह बोले, महाराज जी! आप इसके लिए इतनी गर्मी में आए?

गुरू जी कहने लगे, हमने इसे वचन दिया हुआ था क्योंकि अन्त के समय इसने हमारे दर्शन कर लिए थे। अब जो दर्शनों का फल था, वह हमने इसे दसवें स्वरूप में देना ही था। विचार का तात्पर्य यह है कि दर्शनों का असीम फल हुआ करता है। गुरू जी कहते हैं कि इतना फल होने के बाद भी जो नेत्र, संगत के, महापुरुषों के, गुरुओं के, दर्शन नहीं करते हैं, वे तो धिक्कारयोग्य ही हैं -

ध्रिगु लोइण गुर दरस विणु वेखै पर तरणी।
भाई गुरदास जी वार, 27/10

इसके बाद बारी आती है कानों की। कानों के द्वारा सुनने का बहुत लाभ हुआ करता है। यदि कान गुरू की वाणी नहीं सुनते हैं तो वे भी धिक्कारयोग्य हैं -

ध्रिगु सरवणि ऊपदेस विणु सुणि सुरति न धरणी।
भाई गुरदास जी वार, 27/10

महापुरुषों के वचन तो सुनते हैं लेकिन उनके ऊपर सुरति नहीं रखते हैं। बस सुनकर वहीं छोड़ देते हैं। इस प्रकार के कान भी धिक्कारयोग्य हैं। दरअस्ल कानों का फर्ज है – सुनना। क्या सुनना? गुरू की वाणी को सुनना। इस प्रकार से पढ़ लो –

धारना – पवित्तर होवो जी,
सुण के गुराँ दी बाणी।

ए स्रवणहु मेरिहो साचै सुनणै नो पठाए ॥
साचै सुनणै नो पठाए सरीरि लाए सुणहु सति बाणी॥
जितु सुणी मनु तनु हरिआ होआ रसना रसि समाणी॥
सचु अलख विडाणी ता की गति कही न जाए ॥
कहै नानकु अंम्रित नामु सुणहु
पवित्र होवहु साचै सुनणै नो पठाए ॥ 37 ॥
अंग – 922

चाहे बाहरी कानों के द्वारा सुन लो और चाहे आन्तरिक कानों के द्वारा सुन लो। दोनों का महात्म्य गुरू जी ने इस शब्द में निरूपण किया है। अतः कानों के सुनने का भी बेशुमार महात्म्य हुआ करता है।

एक महात्मा बंगाल के रहने वाले थे। वे योग क्रियाएँ करने वाले थे। योग से सम्बन्धित छः चक्र होते हैं। उसके ऊपर एक बहुत ही बारीक नाड़ी स्थित है जिसे कि भुजंगा नाड़ी कहते हैं। इस भुजंगा नाड़ी का छेद बहुत ही बारीक होता है और यह रीढ़ की हड्डी के निचली तरफ, ऊपर की ओर चढ़ी रहती है जैसे साँप ने अपने मुँह में किसी चीज को पकड़ा हुआ हो। यही कारण है कि उसे सर्पिनी नाड़ी भी कह देते हैं। वह महात्मा उस नाड़ी को जगा रहा था। वह साढ़े तीन बार लिपटी हुई है। वैज्ञानिक भाषा में उसे इलैक्ट्रानिक्स कहते हैं। यदि वह नाड़ी जागृत हो जाए तो फिर उसके अन्दर एकदम करंट आ जाती है, फलस्वरूप सारे शरीर में एक प्रकार से विद्युत धारा सी प्रवाहित होती हुई प्रतीत होती है। उसमें इतनी अधिक रौशनी होती है, जिसे आन्तरिक आंखों के द्वारा देख पाना मुश्किल हो जाता है। दूसरी तरफ यदि कहीं उसमें कोई दोष उत्पन्न हो जाए तो फिर सारा शरीर गल भी जाता है। इधर यह बंगाल का महात्मा उस सुखमना नाड़ी को जागृत करने की कोशिश कर रहा था लेकिन साधन गलत हो गया। उसके कारण से हुआ यह कि उसका सारा शरीर ही फूट गया और सारे शरीर पर फोड़े ही फोड़े हो गए। अब वह बहुत दुखी हो गया, उसके शरीर में से बहुत अधिक दुर्गन्ध आने लग पड़ी। बहुत अधिक उपचार करवाया लेकिन वह ठीक न हो सका। साधू-सन्त कहने लगे कि इस चीज का तो कोई भी इलाज है ही नहीं। इसी क्रम में घूमते-घूमते वह उकाड़ा (मिन्टगुमरी) में आ गया। वहाँ पर सन्त बसन्त सिंह जी गुरुद्वारा साहिब में आखंड पाठ साहिब करवा रहे थे। वह महात्मा वहाँ पर बैठ गया। जब सन्त जी वहाँ पर आए तो वह कहने लगा, महाराज जी! मैं बहुत दुखी हूँ, मेरे ऊपर कृपा करो।

वे कहने लगे, देखो भाई! तुम श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी की वाणी को मन-चित्त लगाकर श्रवण कर लो। इस वाणी के अन्दर शक्ति है कि इसके द्वारा रोगों का नाश हो जाता है –

नानक भगता सदा विगासु ॥
सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥ *अंग – 2*

उसका विस्तर लगा दिया गया। तीन दिन लगातार वह पाठ श्रवण करता रहा और तीन दिन में उसका शरीर कंचन जैसा हो गया। उसके बाद वह बाबा जी के पास आ गया।

वे कहने लगे, महात्मा जी! क्या हाल है?

वह बोला, महाराज जी! मैं तो बिल्कुल भला चंगा हो गया हूँ।

बाबा जी बोले, सन्त जी! यह तो अच्छा हो गया है, अब आपकी मर्जी है।

वह बोला, बाबा जी! मैं तो आपके चरणों में ही रहना चाहता हूँ। मुझे तो पता ही नहीं था कि श्री गुरू जी की वाणी के अन्दर इतनी शक्ति है।

इसी प्रकार से एक ज्ञानी भक्त राम जी थे। उनके पास एक कोढ़ी आ गया। उसने विनती की कि महाराज जी! मेरे ऊपर कृपा करो। ज्ञानी भक्त राम जी कहने लगे, भद्रपुरुष! मैं तुम्हें 21 दिन 'बावन अखरी' वाणी सुनाऊँगा, तुम उसे ध्यानपूर्वक सुनना। उसने ध्यानपूर्वक पाठ सुना फलस्वरूप वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया। साधु संगत जी! सुनने का बहुत बड़ा महात्म्य होता है। इस प्रकार से यदि कोई व्यक्ति इतनी महत्ता वाली वाणी को नहीं सुनता है तो फिर वह कितने बड़े फल से वंचित रह जाता है।

इसी प्रकार से एक महात्मा हुए हैं, जिनका नाम चेत सिंह था। वे बहुत अधिक सेवा किया करते थे। उनके पास एक बार एक ब्राह्मण आ गया। वह बीमार था, उसे अतिसार लगे हुए थे। बाबा चेत सिंह जी थोड़ी बहुत दवा-दारू भी दिया करते थे, इसलिए वे उनकी दवा-दारू करने लग पड़े लेकिन अतिसार इतने सख्त थे कि वे कम होने का नाम ही नहीं ले रहे थे बल्कि बढ़ते ही जा रहे थे। एक दिन उन्होंने उसकी सारी सेवा की, दवाई वगैरह दी और उसके बाद कहने लगे लो भाई पण्डित जी! मैंने तो अब सुखमनी साहिब का

पाठ करना है और यह मेरा नियम है कि मैं पाठ करते समय बीच में बोलता नहीं हूँ, इसलिए यदि किसी चीज की जरूरत है तो वह अभी ले लो, बीच में बुलाने से गुरेज करना। वह बोला, नहीं, महाराज जी! आप पाठ करो मैं भी पाठ सुनूँगा। बाबा जी ने उसे अपने पास में ही उसे चारपाई पर लिटा लिया और आप आसन पर बैठ गए तथा नेत्र बन्द कर लिए। आप पाठ करते गए और वह ब्राह्मण सुनता गया। सुखमनी साहिब का पाठ पूरा होने के बाद जब महापुरुषों ने नेत्र खोले तो आप हैरान रह गए कि वह पण्डित तो परलोक गमन कर गया है। मन में शंका हो गया कि इन लोगों की तो यह मर्यादा है कि मरने के समय चारपाई से नीचे उतार देते हैं। कहीं इसकी अवगति ही न हो जाए। इस प्रकार उनके मन में चिन्ता उत्पन्न हो गई। उस समय आप उसके अन्तिम संस्कार की तैयारी भी करते जा रहे हैं। उधर आपने पण्डित को अर्थी पर लिटा लिया। संगत भी वहाँ पर धीरे-धीरे एकत्र होने लग पड़ी लेकिन क्या देख रहे हैं कि उसका एक पैर हिल रहा है। थोड़ी देर बाद वह उठ कर बैठ गया।

कहने लगे लो भाई! पण्डित तो जीवित हो गया है। अब इसे उठा दें।

कहने लगा, नहीं-नहीं, मुझे कोई भी उठाना नहीं। इतने में सन्त जी आ गए। वे कहने लगे, क्या बात हो गई, पण्डित जी?

पण्डित कहने लगा, महाराज जी! आपके मन में शंका हो गई थी न कि मैं चारपाई पर ही मर गया हूँ, इसलिए मेरी गति नहीं होगी। मैं तो आपको यह बताने आया हूँ कि मेरी तो उत्तम गति हो गई है, जिसके बारे में, मैं सोच भी नहीं सकता था। महाराज जी! आप गुरवाणी पढ़ रहे थे और मेरे कान, आपकी वाणी की तरफ लगे हुए थे। उस समय मुझे ले जाने के लिए विवान आ गए और अब मुझे दरगाह से वापिस भेजा गया है कि जाओ सन्त जी को बतला कर आओ ताकि वे कोई चिन्ता न करें। जो भी व्यक्ति गुरवाणी सुनते-सुनते परलोक-गमन कर जाएगा वह हमारे पास ही आएगा।

वह पण्डित कहने लगा, महाराज जी! मैं तो आपको यह सब बताने के लिए ही आया था। इतना कह कर वह लेट गया और परलोक-गमन कर गया।

इस प्रकार महाराज जी कथन करते हैं जो कान इतना फायदा नहीं उठा पाते हैं तो फिर वे किस काम के?

करन ना सुनै नाद करन मूंद गालीऔ।

इसके बाद बारी आती है जिह्वा की। जिह्वा के अन्दर भी बहुत बड़ा दोष है। इसका दोष यह है कि यदि इसका गलत प्रयोग कर लिया जाए तो जितना अधिक पाप इसका लगता है उतना अन्य किसी का नहीं लगता है लेकिन दूसरी तरफ यदि इसका सही प्रयोग कर लिया जाए, तो फिर गुरू जी इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

धारना - कटे जाणगे चऊरासी वाले गेड़े,
सतिनामु बोल वाहिगुरु।

एक चित जिह इक छिन धिआइओ
काल फास के बीच न आइओ ।

चित्त की एकाग्रता सहित यदि आंख के झपकने जितना भी वाहिगुरू जी का ध्यान आ जाए तो दशमेश जी फुरमान करते हैं कि प्रेमीजनो! उसके गले में पड़ी हुई यमों की फाँसी उसी समय कट जाएगी। अब यह देखो कितनी बड़ी रियायत हैं।

जिस समय राजा परीक्षत का राज्य था, उस समय वह जब जंगल में गया तो क्या देखता है कि एक काले कपड़ों वाला व्यक्ति बैल को मारने लगा हुआ है। उस वक्त अभी कल्युग का आगाज ही हुआ था। उसके मन में बहुत अधिक क्रोध आया कि मैं इस काले कपड़े वाले व्यक्ति को तलवार से मार डालूँ। क्योंकि भारतवर्ष में तो कोई व्यक्ति, बैल को मारता ही नहीं था। उसने तलवार हाथ में पकड़ कर घोड़ा सरपट दौड़ा दिया और उसके पास पहुँच गया। जब वह इसे मारने लगा तो वह बोला, राजन्! मेरी बात सुनो। तुम मुझसे यह पूछो कि मैं इसे क्यों मार रहा हूँ?

राजा ने पूछा, क्यों मार रहे हो?

वह बोला, तीन युग समाप्त हो चुके हैं। मेरे बड़े भाइयों का राजभाग समाप्त हो चुका है और अब मेरी बारी है। मैं कल्युग हूँ।

राजा ने पूछा अब तुम क्या करोगे?

उसने कहा, मैंने राजाओं को कसाई बना देना है और प्रजा को अज्ञानी। स्त्री और पति के प्रेम को मैंने पैसों के बदले में प्राप्त होने वाली वस्तु बना देना है। संसार को मैंने भ्रष्ट कर देना है। न्यायकर्ताओं को मैंने धन लोभी बना देना है। न्याय नाम की कोई भी चीज मेरे राज्य में नहीं होगी। इस प्रकार के उपद्रव मैं लोगों से करवाऊँगा कि लोग मुँह में अंगुलियों ले लेकर कहेंगे कि इस प्रकार के पापीजनों को कहाँ पर जगह मिलेगी इसके अलावा मैं किसी का जप-तप रहने नहीं दूँगा।

जे को सतु करे सो छीजै तप घरि तपु न होई ॥
जे को नाऊ लए बदनावी कलि के लखण एई ॥३॥
अंग - 902

नाम जपने वालों की मैं बदनामी करवाऊँगा और पाखण्डी लोगों के घरों को मैं धन-धान्य से परिपूर्ण कर दूँगा। पाखण्डी सन्तजनों का सम्मान मैं अधिक करवाऊँगा तथा सच्चे सन्तजनों की मैं निन्दा करवाऊँगा। इस संसार के लोगों के हृदयों में से परमात्मा के प्रेम को मैं पूर्णतः खाली कर दूँगा। सारे धर्म ग्रन्थों के अन्दर मैं ऐसे अर्थों को भर दूँगा जिनके फलस्वरूप परमात्मा का प्यार तनिक भी नहीं रह जाएगा। ज्ञान की जगह पर मैं भ्रम व इतने शंके डाल दूँगा कि कल्युग का कोई भी व्यक्ति संसार भवजल को पार ही नहीं कर पाएगा।

राजा परीक्षत बोला, फिर तो तुम्हें मार डालना ही उचित है।

कल्युग बोला, देखो! तुम्हारे तप का बल इतना अधिक है कि तुम मुझे मार सकते हो। इससे पहले एक ऋषि हुआ है जिसने अपनी स्त्री के लिए युगों के आने के क्रम को ही बदल डाला था। उसी के कारण त्रेता पहले आया और उसके बाद द्वापर आया। इसलिए तुम भी मुझे मार सकते हो लेकिन इसके साथ ही मेरे युग की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात भी सुन लो।

वह बोला, वह क्या है?

कल्युग बोला, इतना पापी होने के बाद भी यदि कोई व्यक्ति अपने ध्यान को एकाग्र करके एक बार भी अल्लाह, नारायण, गोबिन्द, परमात्मा कह देगा तो भी उसके सारे पापों का नाश हो जाएगा तथा वह बैकुंठ धाम में निवास कर जाएगा। यह सुनने के बाद राजा ने तलवार को अपनी म्यान में डाल दिया।

राजा बोला, इतना अधिक फल?

कल्युग बोला, हाँ, इतना अधिक फल ही है।

श्री गुरू नानक देव जी को जब कल्युग मिलता है तो महाराज जी ने कहा, हम परमात्मा के पास से 'नाम' लेकर आए हैं। इस नाम का फल, कल्युग में इतना अधिक है कि यदि किसी के ध्यान में एक बार भी परमात्मा आ जाए तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। आम व्यक्ति के मन में सवाल उत्पन्न होता है कि क्या इस बात का कोई प्रणाम भी है? श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के अन्दर इस बात की स्पष्ट गवाही मिलती है कि एक पण्डित पतित हो गया वह इतना बड़ा विद्वान पुरुष था कि जिसकी चर्चा सारे भारत में होती थी लेकिन समय का ऐसा चक्र चला कि वह गुरू से बेमुख हो गया और एक वैश्या के साथ रहने लग पड़ा -

पतित अजामलु पाप करि जाइ कलावतणी दे रहिआ।
गुरु ते बेमुख होइकै पाप कमावै दुरमति दइआ।
भाई गुरदास जी वार, 10/20

पापों में प्रवृत्त हो गया, गुरू से बेमुख हो गया और परमात्मा को भूल गया -

बिरथा जनमु गवाइअनु
भवजल अंदरि फिरदा वहिआ।
भाई गुरदास जी वार, 10/20

पण्डिताई के काम को छोड़कर वह एक वैश्या के साथ रहने लग पड़ा। पक्षियों को जाल लगाकर पकड़ना तथा उन्हें बेचकर अपना जीवन यापन करना यही उसकी आजीविका बन गई। आखिर में -

छिअ पुत जाए वेसुआ पापाँ दे फल इछे लहिआ।
भाई गुरदास जी वार, 10/20

उसके छः पुत्र हो गए। अब घर में क्लेश बढ़ने लग पड़ा। एक इस प्रकार का बिन्दु जीवन में आ जाया करता है कि जिस समय कोई भी भोग आनन्द नहीं दिया करता है बल्कि उस समय व्यक्ति पाश्चाताप करने लग पड़ता है। इसी प्रकार से शराब पीने वाला व्यक्ति बाद में पाश्चाताप करता है, वह फिर और पीता है लेकिन फिर उसे वह शराब भी नशा नहीं करती है, फिर वह और पीता है और पीता है। इसी प्रकार भोगों में पड़ा हुआ व्यक्ति भोगों से बेरस हो जाता है, आज उसके मन में आया कि ऐ मन! इसकी अपेक्षा तो मर जाना ही ठीक है। अब वह आत्महत्या करने के उद्देश्य से जा रहा है। रास्ते में उसे साधू मिल जाते हैं। उसने सोचा कि चलो आज मर तो जाना ही है, इसलिए जाते-जाते सन्त महाराज जी को नमस्कार ही कर लें। फिर उसने पहचान लिया कि ये तो मेरे गुरू जी ही हैं। वह ऊँची-ऊँची आवाज में रोने लग पड़ा।

उसके गुरू जी बोले, भद्रपुरुष! उठो! रोया नहीं करते हैं। तुम कौन हो?

वह बोला, महाराज जी! मैं पतित अजामल हूँ और आपका शिष्य हूँ जो कि काफी समय पहले आपसे बेमुख हो गया था।

वे बोले, तुम रो क्यों रहे हो?

वह कहने लगा, जी मैं बहुत बड़ा पापी हूँ और आज आत्महत्या करने जा रहा हूँ।

महापुरुष कहने लगे, बेटा जी! मर जाने से दुखों की निवृत्ति नहीं हुआ करती है। दुख तो मर जाने के बाद भी

ज्यों का त्यों खड़ा रहता है। यह तो -

भोगे बिन भागहि नही करम गती बलवान।

उन्हें तो भोगना ही पड़ता है चाहे अभी भोग लो, चाहे बाद में भोग लेना।

उसके गुरू ने कहा, अजामल! तुम्हारे सातवां पुत्र आने वाला है। जब उसका जन्म होगा तो उसे हमारे पास ले आना। हम उसका नाम रखेंगे -

पुतु ऊपंनाँ सतवाँ नाऊ धरण नो चिति ऊमहिआ।
गुरु दुआरै जाइकै
गुरमुखि नाऊ नराइणु कहिआ।
भाई गुरदास जी वार, 10/20

जब उसके घर सातवां पुत्र पैदा हो गया तो वह महापुरुषों के पास उसे लेकर गया और महापुरुषों ने उसका नाम नारायण रख दिया और उसे कहा कि लो भाई! इसे नारायण-नारायण कहते रहा करो। वह उस बच्चे को खूब प्यार करने लग पड़ा और नारायण नाम उसके मुँह पर चढ़ गया।

इसी क्रम में आज उसका वह अन्तिम समय आ गया जो सबके ऊपर आना तय है। यह मृत्यु का फल ऐसा है कि जिसे पाने के लिए तो कुछ लोग पहले से ही प्रतीक्षारत रहते हैं -

कबीर जिसु मरने ते जगु डरै मेरै मनि आनंदु ॥
मरने ही ते पाईऐ पूरनु परमानंदु ॥ 22 ॥
अंग - 1365

दूसरी तरफ कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो कि मृत्यु का नाम सुनकर ही काँपने लग पड़ते हैं क्योंकि जहाँ मरणोपरान्त जाना है उसके लिए न तो उन्होंने कोई तैयारी ही की है और न ही उन्हें पता है कि उन्होंने जाना कहाँ है?

अत: अन्तिम समय पर यमदूत उसे ले जाने के लिए आ पहुँचे।

अंतकाल जमदूत वेखि पुत नराइणु बोलै छहिआ।
भाई गुरदास जी वार, 10/20

उसने पुत्र को आवाज मारी नारायण-नारायण यह कहते कहते उसकी जो सुरति थी, वह वाहिगुरू जी के साथ जा मिली। महाराज जी कथन करते हैं कि -

अजामल प्रीति पुत्र प्रति कीनी करि नाराइण बोलारे॥
मेरे ठाकुर कै मनि भाइ भावनी
जमकंकर मारि बिदारे॥ *अंग - 981*

आँख झपकने जितना समय ही उसकी सुरति परमात्मा की तरफ गई और उसी समय परमात्मा का प्यार उसकी तरफ उमड़ पड़ा -

जमगण मारे हरि जनाँ गइआ
सुरग जमुडंडु न सहिआ।
नाइ लए दुखु डेरा ढहिआ॥
भाई गुरदास जी वार, 10/20

इस प्रकार से पढ़ लो -

धारना - गती मिल गई जोगीआँ वाली,
इक वारी राम बोल के।

अजामल कऊ अंत काल महि नाराइन सुधि आई ॥ जाँ
गति कऊ जोगीसुर बाछत सो गति छिन महि पाई॥
अंग - 902

जिह्वा का प्रयोग इतना जबरदस्त है कि एक बार 'राम' कहा था और दूसरी तरफ यदि इसका कोई दुरुपयोग कर ले तो सारी जिन्दगी का जो दान-पुण्य किया होता है वह सब निरर्थक हो जाता है। गुरू जी हमें इस प्रकार से समझाते हैं, पढ़ो प्यार से -

धारना - निंदा भली किसे दी नाही,
मनमुख लोकी करदे ने।

निंदा भली किसै की नाही मनमुख मुगध करंनि ॥
मुह काले तिन निंदका नरके घोरि पवंनि ॥ 6 ॥
अंग - 755

वही चार अंगुल का माँस का टुकड़ा है, यदि एक बार 'राम' कह दिया तो सारे पापों का नाश करके व्यक्ति बैकुण्ठ धाम को चला जाता है और वही माँस का टुकड़ा है यदि किसी की निन्दा करता है तो उसका फल क्या है -

जे ओहु अठसिठ तीरथ न्हावै ॥
जे ओहु दुआदस सिला पूजावै ॥
जे ओहु कूप तटा देवावै ॥
करै निंद सभ बिरथा जावै ॥ 1 ॥ *अंग - 875*

अब कोई विद्यार्थी करोड़ों की रकम को लाखों, करोड़ों से गुणा करता रहे लेकिन यदि उसका अध्यापक उसे कह दे कि अब तुम इसे शून्य से गुणा कर दो तो वह सारी रकम शून्य ही बन जाती है। जो सयाना बच्चा है वह तो कहता है कि यह तो अच्छा हुआ कि मास्टर जी ने शून्य से गुणा करवा कर हमारा पीछा छुड़वा दिया। वह आराम से उत्तर के तौर पर शून्य लिख देता है। लेकिन दूसरी तरफ जो कम सयाना बच्चा है, वह गुणा करता रहा, करता रहा और जब अन्त में उसने शून्य से गुणा किया तो वह सारी संख्या शून्य ही बन गई।

ठीक इसी प्रकार से आप चाहे जितने भी कर्म, धर्म, नियम, व्रत, पूजा, दान आदि करते रहो लेकिन उसके बाद आप निन्दा कर दो तो वे सब पुनः शून्य बन जाते हैं –

साध का निंदकु कैसे तरै ॥
सरपर जानहु नरक ही परै ॥ *अंग – 875*

नर्कों में ले जाने वाली भी यही चार अंगुल वाली जिह्वा है। यदि यह व्यक्ति कड़वे वचन या अपशब्द बोलता है तो –

फिका दरगह सटीऐ मुहि थुका फिके पाइ ॥
अंग – 473

फिर ऐसे व्यक्ति के मुँह पर थूका जाता है यानि कि उसका निरादर किया जाता है और उसे दरगाह से बाहर धकेल दिया जाता है। दूसरी तरफ यदि इसका सही उपयोग करते हुए वाहिगुरू-वाहिगुरू कहा जाए तो फिर कितनी बड़ी प्राप्ति होती है, इस बारे में गुरू जी का फुरमान है –

धारना – सारा नगर पवित्र हो जावे,
सतिनामु बोल वाहिगुरु।

कबीर सोई मुखु धंनि है जा मुखि कहीऐ रामु ॥
देही किस की बापुरी पवित्रु होइगो ग्रामु ॥
अंग – 1370

जहाँ तक परमात्मा की स्तुति की आवाज जाएगी और परमात्मा का प्यारा जिस शहर में रहता हो, वह सारा पवित्र हो जाएगा। दूसरी तरफ यदि व्यक्ति अपनी जिह्वा के द्वारा परमात्मा के नाम का उच्चारण नहीं करता है तो फिर उसके बारे में ऐसा फुरमान है –

धारना – तेरा मुखड़ा डराऊणै, बिनाँ नाम तों।

फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाऊ ॥
ऐथै दुख घणेरिआ अगै ठऊर न ठाऊ ॥ 106 ॥
अंग – 1383

कबीर कंचन के कुंडल बने ऊपरि लाल जड़ाऊ ॥
दीसहि दाधे कान जिऊ जिन् मनि नाही नाऊ ॥4॥
अंग – 1383

नाम विहीन मुख तो बहुत डरावना हुआ करता है, जबकि नाम जपने वाले मनुष्य का मुख अत्यन्त आकर्षक हुआ करता है। इस प्रकार यदि जिह्वा का दुरुपयोग करते हुए निन्दा की जाए, चुगली की जाए, ईर्ष्या की बातें की जाएँ तो फिर उस व्यक्ति का कल्याण असम्भव है। महाराज जी का फुरमान है –

जिसु अंदरि ताति पराई होवै
तिस का कदे न होवी भला ॥ *अंग – 308*

यदि मीठा बोलता है, बन्दगी करता है नाम-सिमरन करता है तो फिर वह स्वयं तो पार हो ही जाता है, साथ में वह अन्य लोगों का भी उद्धारकर्ता बन जाता है। अतः इस प्रकार का प्रयोग जिह्वा का उचित प्रयोग है। हाथों पैरों का प्रयोग है, सत्संग की तरफ चलकर जाना। सत्संग की तरफ जाने से हाथ पैर सफल होते हैं और एक-एक कदम का फल एक-एक अश्वमेद्य यज्ञ के फल के बराबर प्राप्त होता है, ऐसा महापुरुषों का निर्णय है। किसी तत्व वेत्ता महापुरुष की तरफ यदि कोई व्यक्ति श्रद्धा धारण करके जाता है तो फिर उसके प्रत्येक कदम पर एक यज्ञ के बराबर फल प्राप्त होता है। हाथों का कार्य है सेवा करना। यदि वह सेवा नहीं करता है तो फिर महाराज जी कहते हैं कि उन हाथों को तो फिर धिक्कार है –

धारना – धिरकार ह्थाँ पैराँ नूं,
बाझ गुरा दी सेवा।

विणु सेवा ध्रिगु हथ पैर होर निहफल करनी।

उन हाथों को धिक्कार है जो सेवा नहीं करते हैं तथा उन पैरों को धिक्कार है जो चलकर सत्संग में नहीं जाते हैं। अतः सेवा का इतना बड़ा फल महाराज जी ने लिखा है –

धारना – दरगह मिलदै थाऊं
जे विच दुनीआँ सेव कमाईऐ।

विचि दुनीआ सेव कमाईऐ ॥
ता दरगह बैसणु पाईऐ ॥
कहु नानक बाह लुडाईऐ ॥ *अंग – 26*

सेवा का महात्म्य गुरू घर के अन्दर बहुत अधिक बतलाया गया है। इसका यह तात्पर्य नहीं है जैसे कि आम पढ़े-लिखे लोगों का ख्याल है कि सबको एक वर्ण करने के लिए गुरू जी ने ऐसा निर्णय लिया है। जैसे कि ब्राह्मणों का कार्य था पढ़ना तथा पढ़ाना, दान देना व दान लेना, यज्ञ करना तथा यज्ञ करवाना। क्षत्रियों का कार्य था युद्ध आदि करके देश की रक्षा करनी। वैश्यों का कार्य हुआ करता था, खेतीबाड़ी व व्यापार आदि करके धनोपार्जन करना तथा शूद्रों का कार्य था उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा करनी। महाराज जी ने सबको सेवा करने के लिए कह दिया जो कि शूद्रों का कार्य था ताकि सबको एक पंक्ति में खड़ा किया जा सके, ऐसी बात नहीं है। शूद्र भी उस समय निःशुल्क सेवा नहीं किया करता था बल्कि उनके लिए भी काएदे-कानून बने हुए थे कि इन्हें इनके कार्य के बदले में कितना पारिश्रमिक देना है। दाने आदि इन्हें दिए जाते थे। सारे उसूल बने हुए थे। सब कुछ निर्धारित था। अतः उनसे मुफ्त में काम नहीं

करवाया जाता था बल्कि उन्हें मजदूरी दी जाती थी।

श्री गुरू नानक देव जी ने तो जो सत्य वस्तु थी, सेवा का जो सिद्धान्त था, उसे समाज के समक्ष बखूबी प्रस्तुत किया। यदि श्री गुरू अंगद देव जी ने सेवा की तो उनकी पदवी कितनी बड़ी हुई? वे गुरू ही बन गए। यदि श्री गुरू अमरदास जी ने बड़ी उम्र में आकर सेवा की तो फल क्या हुआ? वे गुरू नानक देव या गुरू अंगद देव जी का रूप ही बन गए। इसी प्रकार से चौथे पातशाह, पाँचवें पातशाह, छठे पातशाह, सारे गुरूओं का जीवन पढ़ लो, गुरसिक्खों का जीवन पढ़ लो, सबने अथाह सेवा की है। पाँचवें पातशाह जी तो सिक्खों की सेवा करने के लिए कितनी-कितनी दूर तक जाया करते थे। आपने पिपली साहिब जाकर रात को लंगर ग्रहण करवाया, संगत के लिए पंखे किए उनकी टांगें दबाकर उन्हें सुलाया। जिस समय बाबा बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी ने आपको पहचान लिया कि गुरू जी तो प्रातः तीन बजे संगत की सेवा कर रहे हैं तो आपने कहा, भाई बुड्ढा जी! भाई गुरदास जी! आप लोग मुझे सेवा क्यों नहीं करने देते हो? सेवा के द्वारा ही तो सब कुछ मिलता है। गुरू जी का ऐसा फुरमान है -

धारना - होवाँ मैं निहाल पाणी,
पूखा पीसण पीस के।

पाणी पखा पीसु दास कै तब होहि निहालु ॥
राज मिलख सिकदारीआ अगनी महि जालु ॥ 1 ॥
अंग - 911

सेवा के मुकाबिले में राजभागों, जागीरों, सरदारियों आदि को आग में जला डालो, यदि सेवा नहीं करनी है। ऐसे नहीं है कि यह शूद्रों को ऊपर ले जाने के लिए तथा सबको एक वर्ण करने जैसी कोई अवधारणा थी। यह सब तो पढ़े-लिखे दिमागों की खोज है। वास्तविकता यह है कि सेवा का असीम फल हुआ करता है -

.....विणु सेवा फलु किसै नाही ॥ अंग - 354

सेवा करने के बिना वह फल प्राप्त नहीं हो पाएगा। सेवा करने का तो गुरू जी ने बहुत बड़ा फल कथन किया है -

धारना - जे तैं चार पदारथ लैणै,
सेवा कर लै साधूआँ दी।

चारि पदारथ जे को मागै ॥
साध जना की सेवा लागै ॥ अंग - 266

माता गंगा जी ने विनती की महाराज! बड़ी बहिन 'करमो' ताने मारती है यानि कि व्यंग्य करती है कि यह गुरुगद्दी तो हमारे पास ही आ जानी है क्योंकि इनके घर कौन सा पुत्र होना है, इसलिए आप कृपा करो।

गुरू जी कहने लगे, हमने तो कोई भी चीज छिपा कर नहीं रखी है। हमने तो यह स्पष्ट कर दिया है कि सभी प्रकार की कामनाएँ और वासनाएँ सन्तजनों की सेवा करके पूरी की जा सकती हैं। आज के समय में बाबा बुड्ढा जी बहुत बड़े साधू हैं। उनकी सेवा करके आप प्रसन्नता हासिल कर सकते हो। उनकी सेवा करके आप मनवांछित फल प्राप्त कर सकते हो।

पहली बार माता जी काफी लोगों को अपने साथ लेकर जाते हैं। बाबा जी चुप ही रहे, आप जी ने कोई भी वचन नहीं किया। दूसरी बार पुनः माता जी, बाबा बुड्ढा जी के पास जाते हैं। इस बार आपने अपने सिर पर घड़ा रखा हुआ है और उसके ऊपर भोजन रखा हुआ है और बहुत ही श्रद्धा भावना सहित माता जी आपके पास पहुँचते हैं। उधर बाबा बुड्ढा जी स्वयं माता जी के सिर के ऊपर से वह घड़ा व भोजन उतारते हैं तथा जुते हुए खेत में बैठकर ही आप भोजन ग्रहण करते हैं। आप साबुत प्याज को अपने हाथ में लेते हैं और अपने ही घुटने पर रखकर मुक्का मारते हैं, साथ ही आप जी वचन करते हैं कि इस प्रकार का दलभंजन शूरवीर आपके घर में पैदा होगा जो कि दुष्टों के सिरों को इसी प्रकार से फोड़ डाला करेगा। सेवा का फल मिल गया न।

सेवा यह नहीं है कि शूद्रों का कार्य ब्राह्मणों को सम्भाला है। ऐसी बात नहीं है सेवा तो बहुत बड़ी चीज है। धन के द्वारा सेवा नहीं हुआ करती है बल्कि सेवा निष्काम भावना से हुआ करती है।

सो सेवकु जो लाइआ सेव ॥
तिन ही पाए निरंजन देव ॥ अंग - 1159

हरि का सेवकु सो हरि जेहा ॥
भेदु न जाणहु माणस देहा ॥
जिऊ जल तरंग ऊठहि बहु भाती
फिरि सललै सलल समाइदा ॥ अंग - 1076

इस प्रकार से श्री गुरू नानक देव जी ने मरदाना जी को समझाया कि मरदाना! ये जो शरीर के अंग हैं, ये परमात्मा के मिलाप के लिए बहुत मददगार साबित हुआ करते हैं। यदि एक-एक अंग अपना कार्य करे तो बेशुमार फल प्राप्त हुआ करता है। दरअस्ल यदि सारे अंग अपनी-अपनी जगह पर बखूबी ड्यूटी निभाएँ तभी ये अंग सफल हो पाते हैं और तभी यह शरीर सफल हो पाता है।

(शेष पृष्ठ 50 पर)

सेवा का फल

बाबा हरपाल सिंह जी

विचि दुनीआ सेव कमाईऐ ॥
ता दरगह बैसणु पाईऐ ॥
कहु नानक बाह लुडाईऐ ॥ अंग - 26

मनु बेचै सतिगुर कै पासि ॥
तिसु सेवक के कारज रासि ॥
सेवा करत होइ निहकामी ॥
तिस कउ होत परापति सुआमी ॥ अंग - 286

चारि पदारथ जे को मागै ॥
साध जना की सेवा लागै ॥
जे को आपुना दूखु मिटावै ॥
हरि हरि नामु रिदै सद गावै ॥
जे को आपुनी सोभा लोरै ॥
साधसंगि इह हउमै छोरै ॥
जे को जनम मरण ते डरै ॥
साध जना की सरनी परै ॥
जिसु जन कउ प्रभ दरस पिआसा ॥
नानक ता कै बलि बलि जासा ॥ अंग - 266

परम सम्माननीय गुरू प्यारी साधु संगत जी! ख्यालों को बाहर जाने से रोकने की कोशिश करे तथा चित्त वृत्तियों को एकाग्र करते हुए, जिह्वा की पवित्रता हेतु उच्चारण करो 'सतिनाम श्री वाहिगुरू'। श्री गुरू जी की अपार कृपा हुई है जो कि तीन सौ पचास वर्षीय श्री आनन्दपुर साहिब स्थापना दिवस को समर्पित सत्संग हो रहे हैं। यदि आप अपने गुरू की तरफ एक कदम आगे बढ़ाते हो तो गुरू जी भी -

चरन सरन गुरु एक पैंडा जाइ चल,
सतिगुरु कोटि पैंडा आगे होइ लेत है।
कबित, भाई गुरदास जी

प्यार में सराबोर होकर ही हम सब इस गुरू दरबार में पहुँचते हैं। पिछले दीवानों में हमने यह विचार शुरू की थी कि जब गुरू के द्वार पर आओ तो फिर पीछे की तरफ मुड़ कर न देखो -

आगाहा कू त्राघि पिछा फेरि न मुहडड़ा ॥
अंग - 1096

अब वह गुरसिक्ख, जिसके घर में अत्यन्त गरीबी थी, जब नमस्कार करके वापिस लौटने लगा तो गुरू जी उसे कहने लगे, प्रेमीपुरुष! इस द्वार पर आकर तुम उतावलापन धारण न किया करो। वह कहने लगा, महाराज जी! आप तो जानते हैं कि मैं गरीब व्यक्ति हूँ और मेरे पास कोई जमीन जायदाद भी नहीं है, इसलिए मैं मजदूरी करके अपने बच्चों का पेट पालता हूँ। गुरू जी बोले, भद्रपुरुष! तुम गुरवाणी पढ़ते हो? वह कहने लगा, हाँ, महाराज जी! मैं तो कथा भी करता हूँ। गुरू जी बोले, फिर तुम्हें इस द्वार पर विश्वास नहीं है? यहाँ पर आकर तो तुम्हें प्यारपूर्वक सेवा करनी चाहिए।

उच अपार बेअंत सुआमी कउणु जाणै गुण तेरे ॥
गावते उधरहि सुणते उधरहि बिनसहि पाप घनेरे ॥
अंग - 802

इस द्वार पर आकर गाने व सुनने वाले यानि कि सभी का कल्याण होता है, भला होता है। पाप समाप्त हो जाते हैं क्योंकि यह द्वार ही ऐसा है, जहाँ पर कि सबका भला होता ही है।

पसू परेत मुगध कउ तारे पाहन पारि उतारै ॥
नानक दास तेरी सरणाई सदा सदा बलिहारै ॥
अंग - 802

इस द्वार पर तो सभी बलिहार जाते हैं, लेकिन तुम्हारे अन्दर तो इतना उतावलापन है कि तुम तो प्रसाद भी नहीं लेते हो, संगत में बैठते भी नहीं हो और तुरन्त लौट जाते हो?

वह कहने लगा, महाराज जी! मैंने तो काम पर जाना होता है।

गुरू जी बोले, प्रेमीपुरुष! तुम्हारे काम तो स्वतः ही ठीक हो जाएँगे -

थिरु घरि बैसहु हरि जन पिआरे ॥
सतिगुरि तुमरे काज सवारे ॥ अंग - 201

सतगुरू तो तुम्हारे सभी कायोछ्व को ठीक कर देगा तुम इस बात की कोई फिक्र मत करो।

लेकिन इसे कोई विश्वास ही नहीं है कि क्या ऐसे भी हो सकता है? गुरू जी कहने लगे, प्रेमीपुरुष! तुम्हें इस बात

का पता प्रयोगात्मक रूप से भी लग जाएगा। तुम हमारा सन्देश इस पत्र के रूप में ले जाओ और इसे दमदमा साहिब जाकर भाई डल्ला को देकर आओ। इस प्रकार आपने उसे श्री आनन्दपुर साहिब से दमदमा साहिब की तरफ भेज दिया। वह बोला, ठीक है महाराज जी! मैं यह सेवा तो कर लेता हूँ। अब वह साबो की तलवंडी भाई डल्ला के पास पहुँच जाता है। जब भाई डल्ला ने गुरू जी की दस्ते मुबारिक से लिखी हुई चिट्ठी को जब पढ़ा तो उसमें लिखा था कि यह गुरसिक्ख जो तुम्हारे पास पत्र लेकर आया है इसे नौ महीनों तक वापिस नहीं जाने देना है, यह शाम के समय कथा भी करता है, इससे धर्मशाला में कभी भी करवानी है और इसके ऊपर पहरा भी रखना है कि कहीं यह चला ही न जाए।

भाई डल्ला कहने लगा, देखो भद्रपुरुष! गुरू का यह हुक्म है। गुरू का जो हुक्म होता है उसके बराबर कोई सेवा नहीं हुआ करती है। गुरू जी ने तुम्हारे लिए यह हुक्म दिया है और मेरे लिए यह हुक्म दिया है। इस हुक्म को मानने में ही हम दोनों की भलाई है। गुरू की आज्ञा को मानने के बराबर अन्य कोई सेवा नहीं है।

वह मन में सोचता है कि यह तो गुरू जी ने मुझे कैद में ही डाल दिया है। अब मेरे परिवार का क्या बनेगा? उसका दूसरा मन कहता है कि -

तू काहे डोलहि प्राणीआ तुधु राखैगा सिरजणहारु ॥
जिनि पैदाईस तू कीआ सोई देइ आधारु ॥ अंग - 724

उस परमेश्वर को स्वयं चिन्ता है। जीव की जो प्रारब्ध है वह उसे मिलनी ही है। अब उस प्रेमी पर पहरा लगा दिया गया और अब वह वहाँ से कहीं अन्यत्र जा ही नहीं सकता है। उसने भी फिर वहीं पर रहकर गुरू के हुक्मानुसार कथा करनी शुरू कर दी। दिन बीतते गए। उसके परिवार वालों को भी पता चल गया कि उन्हें तो गुरू जी ने सेवा में लगा लिया है। परिवार में एक उसकी घरवाली थी और दूसरी उसकी बेटी थी। उन्होंने सोचा कि हम लोग यूँ कब तक बैठी रहेंगी अत: वे किसी जिमींदार के यहाँ काम पर लग गईं। इधर गाँव वालों ने सोचा कि वह तो गुरू की सेवा में लग गया है, इसलिए उन्होंने रसद सामग्री इकट्ठी करके उसके घर पहुँचा दी।

वह माँ-बेटी भी काम पर लग गईं, उधर जिस जिमींदार के यहाँ वे काम पर लगी थीं, उनके घर में एक शादी थी यानि कि वहाँ पर विवाह की तैयारियाँ चल रही थीं। घर की मालकिन बहुत ही अच्छे स्वभाव वाली थी, उसने कहा कि चलो जो भी तुम्हारी मजदूरी बनेगी वह मैं दे दूँगी, तुम लोग काम करो।

गुर का सबदु काटै कोटि करम ॥ अंग - 1195

अब सेवा कोई व्यर्थ तो जाती नहीं है और सेवा को फल तो लगता ही होता है -

संत की सेवा नामु धिआईऔ ॥
नाम तुलि कछु अवरु न होइ ॥
नानक गुरमुखि नामु पावै जनु कोइ ॥ अंग - 265

हम जो भी काम करते हैं वह सेवा ही बन जाती है, बशर्ते हम उसे पूरी तन देही से करें। सेवा दो प्रकार की होती है, एक निष्काम सेवा है और दूसरी सहकाम सेवा है।

एक बार की बात है कि एक महापुरुष थे और एक उनका सेवादार था। वे जगह-जगह भ्रमण करते रहते थे और चौमासा काटने के लिए अपनी कुटिया में आया करते थे। महात्मा जी का जो सेवादार था वह बहुत ही शंकावादी था। वह पैर-पैर पर शंका किया करता था। महात्मा के वचनों को वह बीच में ही टोक दिया करता था। महापुरुष कहा करते थे कि जो भी हो रहा है, वह ठीक ही हो रहा है -

ना को मूरखु ना को सिआणा ॥
वरतै सभ किछु तेरा भाणा ॥ अंग - 98

लेकिन वह सेवादार कहता महाराज जी, मैं सेवा आपसे अधिक करता हूँ। आप सो जाते हैं और मैं पहरे पर रहता हूँ। आपका स्नान भी करवाता हूँ, भोजनादि का प्रबन्ध भी करता हूँ, आपके वस्त्र भी धोता हूँ, सारे कार्य मैं करता हूँ, लेकिन मेरे चेहरे पर कोई जलाल नहीं आता है जबकि आप कहते हो कि -

सदा अनंदु तह नही बिओगु ॥ अंग - 275

आप तो कभी भी शिकवा-शिकायत नहीं करते हो। महात्मा कहने लगे, भद्रपुरुष! यह केवल सोच का ही अन्तर है। यह बात ठीक है कि तुम्हारी सेवा मुझसे अधिक है, तुम मेहनत भी अधिक करते हो लेकिन तुम्हारे अन्दर शंकाएँ व शिकायतें हैं। इसलिए -

मति थोड़ी सेव गवाईऔ ॥ अंग - 468

अब जब वे अपनी कुटिया में पहुँच गए तो क्या हुआ कि एक तेज आँधी आ गई और उस आंधी ने उनकी कुटिया वाले छप्पर को ही उड़ा दिया। रात थी, महापुरुष कहने लगे चलो प्रेमीपुरुष। अब यहीं आराम कर लेते हैं अब रात को कहाँ जाएँगे। आकाश में चन्द्रमा चमक रहा है और आँधी भी पूरी तरह से रुक गई है। लेकिन उस सेवादार की, सारी रात, उस आँधी को अपशब्द कहते हुए ही बीती। वह कहने

लगा, ऐ भगवान! तुमने हमारा छप्पर ही उड़ाना था, अन्य इतने बड़े-बड़े महल पड़े हुए हैं उन्हें तो आँधी ने कुछ भी नहीं कहा और हमारा छप्पर तुरन्त उड़ा दिया। उधर महापुरुष लेटे हुए तारा मण्डल को देखते रहे, उन्होंने चन्द्रमा की चाँदनी का आनन्द लिया, ठंडी-ठंडी हवा की आनन्दानुभूति की। उस समय महापुरुषों के मुख से ईश्वर के धन्यवाद में एक कविता उच्चरित हुई। ब्रह्म मुहुर्त में सन्त जी ने स्नानादि किया और समाधि का आनन्द लिया। जब सूर्योदय हो गया तो महापुरुष कहने लगे, भद्रपुरुष! तुमने प्रयोगात्मक रूप से देख लिया कि मुझमें और तुममें क्या बुनियादी अन्तर है। तुम तो सारी रात परमात्मा को उलाहने ही देते रहे। जैसे कि सधना घर से जगन्नाथपुरी की यात्रा पर चला और वह रास्ते में एक पीपल के वृक्ष के नीचे स्थित चबूतरे पर विश्राम हेतु रुक जाता है। वहाँ से सामने एक महल है, वहाँ से एक युवा महिला इसे देखती है। इधर यह सधना भजन बन्दगी में स्थित हो जाता है लेकिन उस महिला का मन विषय-विकारों में चंचल हो रहा है, उसे नींद नहीं आ रही है, वह कृपाण को उठाकर घुमाने लग जाती है और वह कृपाण अचानक उसके पति को लग जाती है। उसके बाद वह सधना के पास आ जाती है और कहती है कि तुम मुझे यहाँ से ले चलो। मैं अपने साथ गहने व जेवर भी ले आई हूँ। महापुरुष कहने लगे, यह नहीं हो सकता है क्योंकि यदि व्यक्ति का चरित्र गिर जाए तो फिर उसकी मृत्यु हो जाने जैसा ही हो जाया करता है, इसलिए -

देखि पराईआँ चंगीआँ, मावाँ भैणाँ धीआँ जाणै।
भाई गुरदास जी, वार 6/8

अतः वह कहने लगा यह नहीं हो सकता है। उसने अब अपने पति की कटी हुई गर्दन उसके सामने लाकर रख दी और कहने लगी, देखो! यह रुकावट थी न? अब तो यह भी रुकावट समाप्त हो गई है। अब हम लोग कहीं चलते हैं, लेकिन सधना नहीं माना। जब उसने, उसकी अपील को नहीं माना तो फिर उसने शोर मचा दिया कि इसने मेरे पति को मार डाला है और यह मुझे अपने साथ ले जा चाहता है। परदेश की बात थी, सधना को पकड़ लिया गया। सधना जी उस समय कहते हैं कि जब मैं कसाई था तो मौज में रहता था, बकरों के गले काटता था और आनन्द में रहता था। उस समय इस तरह की कोई विपत्ति नहीं आई। अब जब मैं तीर्थ यात्रा पर चला हूँ तो यह कैसी विपदा मेरे ऊपर आ गई है?

हुक्म हो गया कि इसके हाथ काट डालो अथवा इसे दीवार में चिन दो या फिर इसकी बलि दे दो। उस समय सधना परमात्मा को उलाहने देता है -

न्रिप कंनिआ के कारनै इकु भइआ भेखधारी ॥
कामारथी सुआरथी वा की पैज सवारी ॥ अंग - 858

ऐ परमत्मा! वह तो एक भेषधारी था उसकी इज्जत आपने रख ली और मेरे साथ यह सब क्या हो रहा है? आवाज आई कि सधना! यह तेरा कर्म है। सधना बोला, कर्म?

तव गुन कहा जगत गुरा जउ करमु न नासै ॥
सिंघ सरन कत जाईऐ जउ जंबुकु ग्रासै ॥
अंग - 858

यदि कर्म मिटने ही नहीं हैं तो फिर तुम्हारे द्वार पर आने का क्या लाभ है? वे कहने लगे, ऐ भाई सधना! तुम तो दरवेश हो और दरवेशों को तो वृक्षों का सा स्वभाव रखना पड़ता है -

दरवेसाँ नो लोड़ीऐ रुखाँ दी जीराँदि ॥ अंग - 1381

अतः सधना! तुम धैर्य रखो तुम तो लगतार उलाहने दे रहे हो और शिकायतें कर रहे हो। सधना बोला, महाराज! धैर्य! इधर तो हुक्म दे दिया गया है कि इसे दीवार में चिन दो तथा इसकी बलि दे दो और आप कह रहे हो कि धैर्य रखो? यदि एक बूँद स्वाति नक्षत्र के पानी के लिए बाबीहा तड़प कर मर गया तो उसके बाद समुद्र का क्या करोगे?

एक बूंद जल कारने चात्रिकु दुखु पावै ॥
प्रान गए सागरु मिलै फुनि कामि न आवै ॥
अंग - 858

यदि प्राण ही चले गए तो फिर समुद्र का क्या लाभ है?

प्रान जु थाके थिरु नही कैसे बिरमावउ ॥
बूडि मूए नउका मिलै कहु काहि चढावउ ॥
अंग - 858

जब आदमी डूब ही गया तो उसके बाद नाव भेज दी, अब उसका क्या लाभ है? उधर प्रभु जी कह रहे हैं कि तुम तो दरवेश हो इसलिए तुम धैर्य ही रखो क्योंकि इस द्वार पर अरदास ही चलती है हुक्म नहीं -

नानक हुकमु न चलई नालि खसम चलै अरदासि ॥
अंग - 474

फिर सधना जी ने अत्यन्त लाचारावस्था में कहा कि महाराज जी! मैं तो कुछ भी नहीं हूँ, जो कुछ भी हो, तुम्हीं हो -

मै नाही कछु हउ नही किछु आहि न मोरा ॥
अउसर लजा राखि लेहु सधना जनु तोरा ॥
अंग - 858

अब प्रभु जी ने उस महिला के मन को प्रेरणा दे दी कि इस परदेशी को सजा क्यों दिलवानी है क्योंकि कुकर्म तो मैंने किया है। अतः वह दौड़ी हुई आ जाती है तथा अपने अपराध को कबूल कर लेती है। इधर किले की दीवार भी ढह जाती है -

हरि का भगतु प्रगट नही छपै ॥ अंग - 265

इस प्रकार से इस गुरसिक्ख को ढाढ़स बंधाया जा रहा है कि तुम धैर्य रखो और फिर तुम्हारे सभी कायोद्ध को गुरू जी स्वयं ही सम्पन्न कर देंगे। तुम तो बस यहाँ पर गुरू जी के हुक्म में रहकर सेवा करो। अब वह सेवा करने लग जाता है।

इधर इसकी बेटी व उसकी घरवाली उस विवाह वाले घर में काम करने लग पड़ती है। आज वे दोनों मिट्टी खोदने के लिए गई हैं ताकि वे विवाह के समय के लिए चूल्हों की लिपाई आदि कर सकें। जब वे मिट्टी खोद रही थीं तो उन्हें अशरफियों से भरी हुई गागर मिल पड़ी। सभी कहने लगे कि यह तो गुरू जी की सेवा का फल है। इधर इस महिला का पति व उस बच्ची का पिता, गुरू की सेवा कर रहा है और उधर गुरू ने कितनी बड़ी कृपा कर दी। दरअस्ल गुरू की तो दृष्टि में ही कृपा हुआ करती है -

लख खुसीआ पातिसाहीआ जे सतिगुरु नदरि करेइ ॥
निमख एक हरि नामु देइ मेरा मनु तनु सीतलु होइ॥
अंग - 44

अब उनके घर में तो खुशियों की बहार आ गई क्योंकि यदि सतगुरू की शुभ दृष्टि हो जाए तो फिर अनन्त खुशियाँ स्वतः ही आ जाती हैं और यदि दृष्टि बदल जाए -

नदरि उपठी जे करे सुलताना घाहु कराइदा ॥
दरि मंगनि भिख न पाइदा ॥ अंग - 472

यदि गुरू प्रसन्न हो गया तो फिर -

गुर की सेवा पाइे मानु ॥ अंग - 864

सचै मारगि चलदिआ उसतति करे जहानु ॥
अंग - 136

आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ ॥
फरीदा जे तूं मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ ॥
अंग - 1382

यदि गुरू के बन जाओ तो फिर यह सारी सृष्टि ही अपनी है। इधर यह गुरसिक्ख गुरू की सेवा में नौ महीने से सेवारत है और पीछे घर में खुशियाँ आ गईं, कोठियाँ बन गईं, कारोबार चल गया। समय अपनी चाल से आगे बढ़ता चला गया। अब यह गुरसिक्ख नौ महीने गुरू के हुक्मानुसार सेवा और सिमरन करने के बाद आज अपने घर की तरफ वापिस चल पड़ा है। गाँव में आकर देखता है कि मेरी टूटी सी झोंपड़ी की जगह पर तो सुन्दर महल बन गया है, सोचता है कि बस मेरा घर-बार बिक गया होगा क्योंकि घर में कोई कमाने वाला तो है नहीं था, इसलिए किसी अमीर ने मेरा घर खरीद कर अपना महल निर्मित कर लिया होगा। साथ ही देख रहा है कि घर में तो मेरा छोटा बेटा ही खेल रहा है और उसने सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए हैं। जब उस बालक ने अपने पिता को देखा तो वह दौड़ कर सीढ़ियाँ चढ़ने लगता है और इधर यह गुरसिक्ख भी शीघ्रता से उस बच्चे के पीछे-पीछे सीढ़ियाँ चढ़ता है। वह बच्चा अपनी माँ को कहने लगा, माता जी! पिता जी, पुनः आ गए हैं, अब हम लोग फिर भूखे मरेंगे। अब इसने जब इस बात को अपने कानों से सुना तो उसे याद आया कि मैं तो यूँ ही सोचता रहा कि मेरे बिना, मेरा परिवार भूखा मर जाएगा और यहाँ तो गुरू की कृपा से मेरे बिना ही सब कुछ बन गया है। इस प्रकार से उसकी मेरी-मेरी वाली दीवार टूट गई -

मेरी मेरी कैरउ करते दुरजोधन से भाई ॥
बारह जोजन छत्रु चलै था देही गिरझन खाई ॥
अंग - 693

एक जोजन में 12 कोस तथा 48 मील होते हैं यानि कि इतनी दूरी तक राजा के लिए उसके कर्मचारी छत्र लेकर खड़े रहते थे। वह भी मेरी-मेरी करता था, रावण जैसे भी मेरी-मेरी करते थे -

सरब सुोइन की लंका होती रावन से अधिकाई ॥
कहा भइओ दरि बाँधे हाथी खिन महि भई पराई ॥
अंग - 693

अतः इसके उस ख्याल की दीवार पूर्णतः टूट गई कि यहाँ पर मेरे कारण ही सब कुछ चलता है या मैं ही इनका पालन-पोषण करता हूँ। अब यह वापिस गुरू चरणों में हाजिर होता है और विनय करता है कि महाराज जी! मेरी हंगता व ममता यानि कि मैं व मेरी की सोच समाप्त हो गई है। आप जी के वचन शत प्रतिशत सत्य हैं। मेरा परिवार तो मेरे बिना और भी ज्यादा खुशहाल हो गया है। आपके वचन पूर्णतः सत्य हैं जबकि आम इन्सान की सोच बहुत छोटी है।

हम लोगों की जो सोच है वह बहुत छोटी है, सीमित है। सतगुरू जी तो भला करते हैं। यह भी भला ही है। यह जो भी हो रहा है, हम लोगों ने तो उसकी रजा में राजी रहना है। बहुत सारी परीक्षाएं हुआ करती हैं लेकिन जिनके मन में

विश्वास है, जिनके मन में शत प्रतिशत श्रद्धा है वे तो तनिक भी विचलित नहीं हुआ करते हैं। वे तो सतगुरू की शरण में आकर अरदास किया करते हैं, उनके मन में तनिक भी शिकायत या उलाहना नहीं हुआ करता है। प्यार वाले आशिकों की निशानी के बारे में गुरू जी इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के ॥
विसरिआ जिन् नामु ते भुइ भारु थीऐ ॥
अंग - 488

जो प्यार वाले होते हैं वे तो जरा सा भी मुख दूसरी तरफ नहीं घुमाया करते हैं। लेकिन जिनके मन में सच्चे प्यार की जगह कुछ और ही होता है वे तो अभी कच्चे ही हैं, वे तो उसकी रजा में राजी रहते हैं। जो पारिवारिक मोह में फँसे हुए होते हैं, उनके बारे में तो गुरू जी कहते हैं कि वे तो इस धरती पर एक भार के समान ही हैं -

आपि लऐ लड़ि लाइ दरि दरवेस से ॥
तिन धंनु जणेदी माउ आइे सफलु से ॥ 2 ॥
परवदगार अपार अगम बेअंत तू ॥
जिना पछाता सचु चुंमा पैर मूं ॥ 3 ॥
तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी ॥
सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी ॥ अंग - 488

ऐसा होता है - सच्चा प्यार। जो इस प्रकार से करते हैं-

चंगै चंगा करि मंने मंदै मंदा होइ ॥ अंग - 464

उसकी रजा में राजी रहना यह मुख्य शिक्षा है। अब उस गुरसिक्ख को पता चल गया कि मेरे करने से तो कुछ होने वाला नहीं है, बल्कि होगा तो वही जो परमात्मा चाहेगा। यह तो यदि उस परमात्मा की कृपा हो तभी सब कुछ ठीक रहा करता है। अतः हम लोगों ने विचार शुरू की थी -

सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि ॥
अंग - 1

इन्सान चाहे कितनी भी चतुराइयाँ करता रहे लेकिन उसे कुछ भी प्राप्ति नहीं हो पाती है। जो चतुर लोग हैं, वे तो चतुराइयाँ ही करते रह जाते हैं, जबकि परमात्मा तो भोले लोगों को मिल जाता है -

भोले भाइ मिले रघुराइआ ॥ अंग - 324

इसलिए इस द्वार पर आकर यह वस्तु माँगनी चाहिए कि हे पातशाह! हमें सेवा व सिमरन की वस्तु प्रदान करने की कृपा करो क्योंकि यदि ये दोनों चीजें मिल गईं तो समझो कि हमारी जिन्दगी का सारा मनोरथ पूरा हो गया क्योंकि यही करने के लिए तो हमें मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है -

गुर सेवा ते भगति कमाई ॥
तब इह मानस देही पाई ॥
इस देही कउ सिमरहि देव ॥
सो देही भजु हरि की सेव ॥ 1 ॥
भजहु गुोबिंद भूलि मत जाहु ॥
मानस जनम का एही लाहु ॥ अंग - 1159

अब हम लोग तो अपने इस मनोरथ को पूर्णरूपेण भूले बैठे हैं और इसीलिए यह सत्संग समागम किए जाते हैं ताकि हमें, हमारा मनोरथ याद आ जाए -

आपे हरि इक रंगु है आपे बहु रंगी ॥
जो तिसु भावै नानका साई गल चंगी ॥ अंग - 726

उसकी रजा में राजी रहने का प्रयास करना चाहिए -

जो तुधु भावै साई भली कार ॥
तू सदा सलामति निरंकार ॥ अंग - 3

इसलिए आवश्यकता है विश्वास की, भरोसे की, भावना की। अब सतगुरू जी क्या करें क्योंकि कमी तो हमारे अन्दर है -

कबीर साचा सतिगुरु किआ करै जउ सिखा महि चूक॥
अंधे एक न लागई जिउ बाँसु बजाईऐ फूक ॥
अंग - 1372

यदि बाँस में फूक मारी जाए तो फूक (हवा) दूसरी तरफ निकल जाती है जबकि यदि वही फूक (हवा) बांसुरी में मारी जाए तो उसमें से सुरीली आवाज निकलती है। यही कारण है कि विश्वास या भरोसे वाले व्यक्तियों के ही बेड़े पार हुआ करते हैं -

जा कै रिदै बिस्नासु प्रभ आइआ ॥
ततु गिआनु तिसु मनि प्रगटाइआ ॥ अंग - 285

फिर तो तत्व ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, मनोनाश व वासनाक्षय हो जाती है। अतः हम सब लोग गुरू जी के द्वार पर आए हैं, हमारी झोली में सेवा-सिमरन की भिक्षा पड़ जाए। सारा संसार माया की गाढ़ी नींद में सोया पड़ा है जबकि परमेश्वर या गुरू के प्यार वाले गुरू चरणों में आकर हाजिर हुए हैं। अतः आप सबका धन्यवाद है।

वाहिगुरु जी का खालसा,
वाहिगुरु जी की फतहि।

प्यार भरा सुगन्धित जीवन

(प्यारे महापुरुषों का मधुर स्मृति को समर्पित)

भाई (डा.) सुखविन्दर सिंह

तुम चंदन हम इरंड बापुरे संगि तुमारे बासा ॥
नीच रुख ते उच भए है गंध सुगंध निवासा ॥
अंग – 486

पावन पंक्ति के शब्दार्थ के अनुसार परमात्मा या वाहिगुरू जी की तुलना चन्दन के वृक्ष के साथ करते हुए उसे सुगन्धित बतलाया गया है। गुरवाणी का कथन है, हे माधव! तुम तो चन्दन हो जबकि मैं एक इरंड के सदृश्य हूँ। बस आपकी कृपा की बदौलत मुझे आपको चरणों में रहने की जगह मिल गई है। जब से आपकी मधुर सुगन्ध मेरे अन्दर बसी है, तब से मैं नीचे से ऊंचा बन गया हूँ। पावन गुरवाणी दरगाह की वाणी है और इसलिए इसके शब्द परमात्मा के शब्द हैं, यह सच्चखण्ड की वाणी है और इलाही नाद है। इसे सरलता से समझने व समझाने के लिए इसकी प्राप्ति हमें पंजाबी बोली और गुरमुखी लिपि के माध्यम से हुई। इन धुर दरगाह के वचनों को (**sign & symbols**) चिन्हों व निशानों का प्रयोग करके हमें समझाया गया है। भावार्थ सांसारिक उदाहरण व प्रमाण दिए गए ताकि हम कल्युगी जीव इसके भावों को सरलता से समझ सकें। उपर्युक्त पंक्ति के अनुसार चन्दन रूपी वाहिगुरू को सुगन्धित बतलाया गया है भावार्थ वाहिगुरू जी स्वयं खुशबू रूप है। उनके स्पर्श में से रस, आनन्द व उल्लास आदि की सुगन्ध आती है। जो भी वस्तु उस सुगन्धित व शक्तिशाली को छू जाती है, वह भी खुशबूदार बन जाती है। चन्दन के पास में उगने वाली जड़ी-बूटियाँ व घास फूस आदि भी सुगन्धित हो जाते हैं। केवल बाँस को छोड़कर सारा चौगिरदा सुगन्धित हो जाता है। सारे नजदीकी वातावरण में से सुगन्ध की बहार महसूस होती है। पावन गुरवाणी के अन्दर इस प्रमाण को और भी अधिक खोलकर समझाया गया है –

कबीर चंदन का बिरवा भला बेड्हिओ ढाक पलास ॥
ओइ भी चंदनु होइ रहे बसे जु चंदन पासि ॥
अंग – 1365

इसी प्रकार से जो भी वाहिगुरू जी के साथ अभेद हो जाते हैं वे भी उस खुशबू को पाकर अन्य लोगों को खुशबुएँ बाँटने वाले बन जाते हैं। भाई नन्द लाल जी के अनुसार जो लोग श्री आनन्दपुर साहिब में भिखारी थे, आज वे कलगीधर पिता जी का आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद बादशाहियाँ बाँटते देखे गए हैं। दोनों संसारों की बादशाही उन्हें प्राप्त हो गई है।

खुशबू को महसूस किया जाता है। परमेश्वर प्रेम स्वरूप होकर चहुँओर फैला हुआ है –

जत्र तत्र दिसा विसा होइ फैलिओ अनुराग॥
जापु साहिब

इसके प्यार में रहने वाले भी प्यार के सुगन्धित जीवन वाले बन जाते हैं। दुनियाँ की वस्तुओं में से जहाँ हमें खुशबू प्रतीत होती है, वहीं उनमें से साथ ही साथ बदबू भी आती है, भावार्थ जहाँ पर कुछ अच्छा होता है, वहाँ पर कुछ बुरा भी अवश्य ही होता है। जहाँ सद्गुणों रूपी खुशबू है, वहीं पर आसुरी शक्तियों के दुर्गन्ध भी है। सत्य, सन्तोष, धैर्य, क्षमा, मधुरभाषी, परोपकारी जीवन आदि सभी सुगन्ध का रूप हैं क्योंकि इनके द्वारा मानवता सुगन्धित होती है, लेकिन पाँचों विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) पाँचों विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) आदि की दुर्गन्ध भी आती है। इनके द्वारा मानवता दुर्गन्धयुक्त हो जाती है और फिर यह दुर्गन्ध केवल एक जन्म तक ही सीमित नहीं रहती है, अपितु जन्म जन्मान्तरों तक यह दुर्गन्ध समाप्त नहीं होती है –

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ॥
हउमै ओई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि ॥
अंग – 466

परमात्मा के प्यारे उस वाहिगुरू जी से नाम की सुगन्ध लेकर मानवता में बाँटते हैं और इस विधि से उन्हें दुर्गन्ध से छुटकारा दिलाते हैं। सबसे पहले तो वे स्वयं सुगन्धित होते हैं-

प्रथमे मनु परबोधै अपना पाछै अवर रीझावै ॥
अंग – 381

कलजुग महि कीरतनु परधाना ॥
गुरमुखि जपीऐ लाइ धिआना ॥
आपि तरै सगले कुल तारे
हरि दरगह पति सिउ जाइदा ॥ *अंग – 1076*

वे 'आपि जपहु अवरह नामु जपावहु।।' के धारणी बन जाते हैं और इस नाम रूपी खुशबू के द्वारा एक नहीं बल्कि अनेकों लोग सुगन्धित हो जाते हैं। यह सुगन्ध बिना किसी भेदभाव, रूप, जाति, पात, नस्ल व लिंग भेद से प्रदान की जाती है -

बिसरि गई सभ ताति पराई ॥
जब ते साधसंगति मोहि पाई ॥ अंग - 1299

श्री गुरू नानक देव जी के द्वारा भी यही उपदेश हुआ था जबकि आपने 'उजड़ जाओ तथा बसते रहो' के सिद्धान्त की कृपा की थी। जिन्होंने सच्चे पातशाह जी की हार्दिक रूप से तन व मन से सेवा की थी और जो सुगन्धित थे उनके लिए गुरू जी ने वचन किया कि तुम लोग 'उजड़ जाओ' और दूसरी तरफ जो कि शारीरिक व मानसिक रूप से सतगुरू जी की महिमा से अनजान थे, उनके लिए आप जी ने वचन किया कि 'तुम लोग बसते रहो'। जब भाई मरदाना जी ने इस पर शंका प्रकट की तो गुरू जी ने वचन किया कि भाई मरदाना जी! सुगन्ध को फैलाना चाहिए या उसे ढकना चाहिए? मरदाना जी ने कहा, महाराज जी! सुगन्धी तो जितनी अधिक फैले उतनी ही ठीक है, जबकि दुर्गन्ध को तो ढकना ही ठीक है। गुरू जी ने कहा भाई मरदाना जी! हमने भी सुगन्ध को फैलाया और दुर्गन्ध को ढका है। ये जो परमात्मा के प्यारे हैं ये परमात्मा के प्रेम में सुगन्धित हो चुके हैं। ये जहाँ पर भी जाएँगे वहाँ पर परमात्मा के प्रेम की सुगन्ध को चहुँओर वितरित करेंगे। दूसरी तरफ जो लोग बुरी वृत्तियों वाले हैं वे सब एक ही जगह पर रहें तो ज्यादा ठीक है ताकि वे अपनी वृत्तियों का प्रसार कहीं दूसरी जगहों पर भी न कर दें।

यह कथा इस बात की पुष्टि करती है कि मनुष्यों के जीवन भी सुगन्ध या दुर्गन्ध से भरे हुए हो सकते हैं। यह बात अलग है हम लोग शारीरिक या स्थूल दुर्गन्ध अथवा सुगन्ध को ही जानते हैं भावार्थ हम लोग पदार्थवादी खुशबू या बदबू को ही जानते हैं लेकिन गुरू जी ने तो हमें शारीरिक पवित्रता के साथ-साथ आन्तरिक पवित्रता को रखने की तागीद की है -

करि इसनानु सिमरि प्रभु अपना
मन तन भए अरोगा ॥ अंग - 611

आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ ॥
फरीदा जे तूं मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ ॥
अंग - 1382

जब एक समर्थ सतगुरू अपना बन जाता है तो फिर सारी मानवता अपनी ही बन जाती है -

जिन् नानकु सतिगुरु पूजिआ तिन हरि पूज करावा ॥
अंग - 450

परमात्मा के प्यारे 'एक' की पूजा करके स्वयं भी पूजनीय बन जाते हैं। उनके अन्दर द्वैष भाव समाप्त हो जाता है और परमात्मा के साथ वे अभेद हो जाते हैं अर्थात उनके ऊपर गुरू की ऐसी कृपा हो जाती है -

गुर किरपा जिह नर कउ कीनी
तिह इह जुगति पछानी ॥
नानक लीन भइओ गोबिंद सिउ
जिउ पानी संगि पानी ॥ अंग - 634

निःशंक रूप से सबके शरीर पाँच तत्वों के ही हैं लेकिन आम मनुष्यों में इन पाँच तत्वों वाले गुण शोभायमान नहीं होते हैं। परमात्मा के प्यारों का शरीर भी चाहे पाँच तत्वों वाला ही होता है लेकिन उनके अन्दर इन पाँच तत्वों वाले गुण विद्यमान होते हैं -

अपु तेजु बाइ प्रिथमी आकासा ॥
ऐसी रहत रहउ हरि पासा ॥ अंग - 327

पाँच तत्वों की खुशबू उनके जीवन में से स्वतः ही झलकती हुई दिखाई पड़ती है।

1) मिट्टी का गुण (सुगन्ध)

ब्रहम गिआनी कै धीरजु एक ॥
जिउ बसुधा कोउ खोदै कोउ चंदन लेप ॥अंग - 272

परमात्मा के प्यारों के अन्दर एक बड़ा गुण धैर्य का होता है। जीवन की प्रत्येक स्थिति में दूख-सुख, हानि, लाभ, आदर-निरादर में मिट्टी की भांति सम रहना। चाहे कोई धरती को लेप करे, चाहे कोई उसकी खुदाई करे, धरती को कोई फर्क नहीं पड़ता है। चाहे बड़े-बड़े पहाड़ निर्मित हो जाएँ और चाहे कोई गहरे से गहरे खड्डों को खोद डाले, धरती को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। प्यारे महापुरुषों के जीवन में से एक नहीं बल्कि अनेकानेक ऐसी घटनाएँ प्राप्त हो जाती हैं कि आपने धैर्य को नहीं छोड़ा। ईर्ष्या करने वाले के साथ भी आपने कभी ईर्ष्या वाला व्यवहार नहीं किया और सदैव धैर्यता के साथ ही व्यवहार किया।

2) पानी का गुण (नम्रता तथा निरमलता)

ब्रहम गिआनी निरमल ते निरमला ॥
जैसे मैलु न लागै जला ॥ अंग - 272

पानी का एक गुण यह है कि इसे जिस बर्तन में डाला जाता है, यह उसी के अनुरूप अपना रूप धारण कर लेता है। सांसारिक मैल को धोने के लिए पानी पूर्णतः समर्थ है

लेकिन यह स्वयं सदैव मैल रहित ही रहता है।

प्यारे महापुरुषों का भी जीवन इस प्रकार का था कि आप गृहस्थ में रहते हुए भी, सांसारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए भी, स्वयं पूर्णतः निर्लिप्त ही रहे।

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नै साणे ॥ सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे॥
अंग - 938

नामा कहै तिलोचना मुख ते रामु संम्हालि ॥
हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजनु नालि ॥
अंग - 1376

गुरमुख माइआ विच उदासी। भाई गुरदास जी

सो गिरही जो निग्रहु करै ॥
जपु तपु संजमु भीखिआ करै ॥
पुंन दान का करे सरीरु ॥
सो गिरही गंगा का नीरु ॥ अंग - 952

गुरवाणी के इन सिद्धान्तों पर पहरा देते हुए आपने मानवता को यही सन्देश दिया कि आप सब भी इसी प्रकार की जिन्दगी जियो और आपने इसके लिए खूब सुगन्ध भी वितरित की।

रे मन ऐसो कर संनिआसा॥
बन से सदन सभै कर समझहु
मन ही माहि उदासा॥ रामकली पातिशाही 10

प्यारे महापुरुषों का तथा उनकी जीवनसंगिनी का इसी प्रकार का जीवन था। संसार के अन्दर रहते हुए भी आप संसार से पूर्णतः निर्लिप्त थे।

आकाश वाला गुण (विशालता)

आकाश के स्वभाव के अनुसार महापुरुषों के जीवन में से आकाश वाली सुगन्ध भी प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होती है -

ब्रहम गिआनी कै मनि होइ प्रगासु ॥
जैसे धर उपरि आकासु ॥ अंग - 272

परमात्मा के प्यारों के मन में यह प्रकाश हो जाता है कि प्रभु जी तो कण-कण में व्याप्त हैं। जिस प्रकार से आकाश कण-कण में व्याप्त है, उसी प्रकार से उनके अन्दर भी गुरवाणी की रौशनी होती है -

गुरबाणी इसु जग महि चानणु
करमि वसै मनि आए॥ अंग - 67

दीवा बलै अंधेरा जाइ ॥
बेद पाठ मति पापा खाइ ॥
उगवै सूरु न जापै चंदु ॥
जह गिआन प्रगासु अगिआनु मिटंतु ॥
बेद पाठ संसार की कार ॥
पड़्हि पड़्हि पंडित करहि बीचार ॥
बिनु बूझे सभ होइ खुआर ॥
नानक गुरमुखि उतरसि पारि ॥ अंग - 791

गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेर बिनासु ॥
हरि किरपा ते संत भेटिआ नानक मनि परगासु ॥
अंग - 293

प्यारे महापुरुषों की वृत्ति प्रत्येक समय परमात्मा में लीन रहती थी। श्री गुरू नानक देव जी द्वारा नमाज अदा करने वाली साखी का प्रमाण देकर आप वचन किया करते थे कि दूरी की नमाज नहीं बल्कि हुजूरी की नमाज ही अदा करनी चाहिए यानि कि परमेश्वर को हाजिर जानकर ही गुरवाणी पढ़नी है -

जह जह पेखउ तह हजूरि दूरि कतहु न जाई ॥
रवि रहिआ सरबत्र मै मन सदा धिआई ॥ 1 ॥
ईत उत नही बीछुड़ै सो संगी गनीऐ ॥
बिनसि जाइ जो निमख महि सो अलप सुखु भनीऐ ॥
रहाउ ॥
प्रतिपालै अपिआउ देइ कछु उन न होई ॥
सासि सासि संमालता मेरा प्रभु सोई ॥ अंग - 677

'पेखत सुनत सदा है संगे मै मूरख जानिआ दूरी रे।।' वाली धारना को आप प्रायः अपने दीवानों में पढ़ा करते थे।

उनके अन्दर नाम का प्रकाश इतना अधिक था कि आप किसी भी प्रमाण की तरजमानी इस प्रकार से करते थे कि सब कुछ सामने ही होता हुआ दिखाई पड़ता था, भावार्थ आप बीत चुके समय को खींच कर श्रोताओं के सामने प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत कर देते थे। गुरवाणी का प्रकाश इतना अधिक था कि आप प्रत्येक वचन गुरवाणी की रौशनी में ही करते थे -

गुणा का होवै वासुला कढि वासु लईजै ॥
जे गुण होवनि् साजना मिलि साझ करीजै ॥
साझ करीजै गुणह केरी छोडि अवगण चलीऐ ॥
पहिरे पटंबर करि अडंबर आपणा पिड़ु मलीऐ ॥
अंग - 766

आपने आजीवन गुरवाणी पर आधारित तत्व वचन ही किए और गुरमति के जटिल व गम्भीर सिद्धान्तों को सरल व आसान बोली में प्रकट किया। आपने बड़े से बड़े सिद्धान्त को सरल शब्दों में तथा सांसारिक प्रमाण देकर समझाया। इन

प्रवचनों का प्रकटीकरण उनके द्वारा रिकार्ड करवाई गई सीडीज के माध्यम से प्राप्त होता है। 'आत्म मार्ग' मैगजीन तथा रूहानी प्रवचनों से भरपूर अनेकों पुस्तकें, उनके सरल वचनों के माध्यम से गुरमति के गूढ़ सिद्धान्तों को प्रस्तुत कर रही हैं।

अग्नि वाली गर्माहट

ब्रहम गिआनी सदा निरदोख ॥
जैसे सूरु सरब कउ सोख ॥ *अंग – 272*

जिस प्रकार से सूर्य सारे रसों को सुखा देता है उसी प्रकार से परमात्मा के प्यारे समस्त पापों का नाश कर देते हैं, खोटी मत का नाश कर देते हैं और गुरमति का प्रकाश कर देते हैं। भाई गुरदास जी द्वारा गनका के हवाले के अनुसार–

महाँपुरख आचाणचक्र गनिका वाड़े आइ खलोता।
दुरमति देखि दइआल होइ हथहुं उसनो दितोनु तोता।
भाई गुरदास जी, वार 10/21

परमात्मा के प्यारे खोटी मति वालों के ऊपर भी पसीज जाया करते हैं और उनके ऊपर तरस खाकर यानि कि दयाभाव के द्वारा उनके ऊपर भी परमात्मा से कृपा करवा देते हैं –

संत क्रिपाल क्रिपा जे करै ॥
नानक संतसंगि निंदकु भी तरै ॥ *अंग – 279*

साधू की जउ लेहि ओट ॥
तेरे मिटहि पाप सभ कोटि कोटि ॥ *अंग – 1196*

ब्रहम गिआनी की द्रिसटि अंम्रितु बरसी ॥
अंग – 273

भावार्थ उनकी संगत में आने वाले व्यक्ति का भी उद्धार हो जाता है –

मेरे माधउ जी सतसंगति मिले सु तरिआ ॥ अंग – 10

प्यारे महापुरुषों ने एक नहीं बल्कि अनेकों लोगों को मनमति से हटाकर गुरमति के धारणी बनाया। इस प्रकार की एक नहीं बल्कि अनेकों मिसालें मिलती हैं जबकि आपके सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति बुरे कर्मों से तौबा करके गुरमति का धारणी बन गया। सिन्धु (अब पाकिस्तान में) यू.पी. का तराई क्षेत्र, रूपनगर, चण्डीगढ़ भावार्थ देश व विदेशों में एक नहीं बल्कि अनेकों ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें कि भटके व भूले लोगों का जीवन, आपके माध्यम से सही मार्ग पर चलने वाला बना। यू.पी. के दीवानों में कुमार्ग पर जा चुके प्राणी स्वयं उठकर यह बतलाते कि मैंने इतने पाप किए हैं, मेरा उद्धार किस प्रकार से हो सकता है? विशेष तौर पर जब आप भूमिया चोर, लक्खू, लुटेरा व सज्जन ठग से भाई भूमिया, भाई सज्जन व भाई लक्खू बनने की कथाएँ सुनाया करते थे। गुरू जी की कृपा उन मनमति वालों व कुमार्ग वालों पर भी बरसा करती थी और वे भविष्य में बुरे कार्यों, चोरियों, डाकों व शराबों-कवाबों से तौबा करके खण्डे-बाटे का अमृतपान करके गुरमति वाला जीवन जीने का प्रण करते।

हवा वाली समदृष्टि

ब्रहम गिआनी कै द्रिसटि समानि ॥
जैसे राज रंक कउ लागै तुलि पवान ॥ *अंग – 272*

परमात्मा के प्यारों के अन्दर समदृष्टि वाला स्वभाव होता है जैसे कि हवा, राजा तथा रंक दोनों को समान रूप से लगती है, इसी प्रकार से उनकी दृष्टि में से प्रत्येक समय अमृत बहता रहता है अर्थात नाम रस बहता रहता है –

ब्रहम गिआनी की द्रिसटि अंम्रितु बरसी ॥
अंग – 273

प्यारे महापुरुषों की संगत में चाहे कोई भी आया, चाहे कोई राजा था, चाहे गरीब था, आपकी दृष्टि में कोई भी भेदभाव नहीं था। आप प्रत्येक को आवश्यक सम्मान देते थे। आप समय के बड़े-बड़े शासकों की परवाह भी नहीं करते थे क्योंकि –

रंगि हसहि रंगि रोवहि चुप भी करि जाहि ॥
परवाह नाही किसै केरी बाझु सचे नाह ॥
अंग – 473

आपने एक सच्चे वाहिगुरू जी के सहारे को पकड़ा और आजीवन पकड़ कर रखा। आप जी प्रायः दीवान के आरम्भ में अरदास रूप में मंगलाचरण करते थे कि –

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ॥
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ ॥
अंग – 256

फिरत फिरत प्रभ आइआ
परिआ तउ सरनाइ ॥
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ ॥
अंग – 289

भावार्थ आप हमेशा अपने गुरू जी का ही सहारा लेते थे। समय-समय पर देश के प्रधानमन्त्री डा. मनमोहन सिंह तथा डा. स्वामी राम जी आपके पास आए। आपने सबको प्यार की सुगन्ध ही प्रदान की।

अतः इस प्रकार से जो पाँचों तत्वों में सुगन्ध रूपी गुण शोभायमान हैं वे आपके जीवन में से प्रत्यक्ष रूप में झलकते थे –

अपु तेजु बाइ प्रिथमी आकासा ॥
ऐसी रहत रहउ हरि पासा ॥
कहै कबीर निरंजन धिआवउ ॥
तितु घरि जाउ जि बहुरि न आवउ ॥ अंग – 327

इस प्रकार की जीवन शैली को अपनाते हुए यानि कि नियम व मर्यादाओं का पालन करते हुए आप जी ने परमात्मा का नाम जपा और ऐसे घर में निवास प्राप्त कर लिया जिसके फलस्वरूप आपका आवागमन समाप्त हो गया।

आप जी के जीवन में से एक नहीं बल्कि अनेकों ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें से सुगन्ध झलकती है। उनका जीवन आज भी खुशबू वितरित कर रहा है और यही नहीं अपितु उनका जीवन जन साधारण के जीवन के पृथक-पृथक पड़ावों पर खुशबूओं को वितरित करता हुआ मानवता के लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता है।

बचपन से नाम वाणी की लगन – बचपन से ही नाम-वाणी की लगन, प्राथमिक शिक्षा के समय अपनी कापी पर जगत झूठ (तम्बाकू) शब्द को न लिखना, युवावस्था के समय सेवा-सिमरन तथा कीर्तन के साथ जुड़े रहना, अपने नित्तनेम में परिपक्व रहना आदि अनेकों विशेषताएँ आपके जीवन दृष्टिकोण को इंगित करती हुई जन साधारण को उत्साह व प्रेरणा दे रही है।

सन्त महाराज राड़ा साहिब वालों का मिलाप

प्रथम मुलाकात में ही 'सुहागिन को सुहागिन का मिलाप' वाला वचन होना भी उस दिव्य सुगन्ध का ही एक भाग था। इस वचन ने पूर्वजन्म की तपस्या, वर्तमान की कमाई तथा सतगुरू जी की कृपा को प्रकट किया कि आप जी की कितनी साधना व तपस्या थी, जिसके फलस्वरूप सन्त महाराज (राड़ा साहिब वाले) जी ने आप जी के लिए सुहागिन से सुहागिन का मिलाप वाला वचन किया।

प्यार के सागर – संसार प्रसिद्ध 156 देशों में घूमने वाले तथा समस्त धर्मों का अध्ययन कर चुके डा. स्वामी राम जी ने आप जी को मिलने के बाद ये वचन कहे कि आप तो प्यार का सागर हैं तथा ज्ञान से भरपूर हैं। डा. स्वामी राम जी अपनी जिन्दगी से उदास हो चुके थे, लेकिन महापुरुषों की संगत में आकर आप भी रसयुक्त हो गए तथा उल्लास से भर गए। इस मुलाकात के द्वारा आप बहुत ही आनन्द भाव में चले गए। यह कोई दिव्य सुगन्ध ही थी जो कि डा. स्वामी राम जी को प्राप्त हुई, फलस्वरूप अपना शेष जीवन उन्होंने इसी सुगन्ध के अन्दर व्यतीत किया।

सिन्धु में, फौज में, सचिवालय के सेवाकाल में, यू.पी. में, कृषि फार्मिंग के दौरान यानि कि जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर आपने गुरमति के गूढ़ सिद्धान्तों पर पहरा दिया। धार्मिक दृष्टि से उचित जीविकोपार्जन करना, नाम सिमरन करना, मिल बाँट कर ग्रहण करना, पूजा अकाल (पुरुष) की, परिचय शब्द का तथा दर्शन व दीदार खालसे के सिद्धान्तों पर पहरा देते हुए आपने हम सबको इसी मार्ग का अनुसरण करने की प्रेरणा की –

आपु छडि सदा रहै परणै
गुर बिनु अवरु न जाणै कोए ॥ अंग – 920

आप प्रायः यह करते थे कि मैं तो कुछ भी नहीं कर रहा हूँ, बल्कि मुझसे तो करवाया जा रहा है। दूसरे धर्मों व मजहबों वालों का सम्मान भी आपके हृदय में समान रूप से था। उनके इस दृष्टिकोण का प्रकटीकरण दो घटनाओं के माध्यम से बखूबी होता है।

यू.पी. में मुसलमान बन्धु रोजे रखा करते थे, जब वे लोग अपने रोजे खोलते थे तो सम्माननीया माता जी उन्हें स्वच्छ भोजन बना कर दिया करते थे। इसी प्रकार से रतवाड़ा साहिब के नजदीक चाहड़माजरा नगर के मुसलमान बन्धुओं को अपने मस्जिद का निर्माण करवा कर दिया ताकि वे भी अपने धर्मानुसार अपने अल्लाह की इबादत कर सकें।

गुजरात के भूचाल के समय तथा पंजाब में आए बाढ़ के प्रकोप के समय आपने जरूरतमन्दों की सहायतार्थ खाने पीने की सामग्री के अतिरिक्त वस्त्र, बच्चों को किताबें-कापियाँ व वर्दियाँ तथा स्कूलों की इमारतों पर सफेदी आदि करवा कर दी। ये सब बातें उनके सुगन्धित जीवन को ही दर्शाती हैं।

आपके अन्दर त्याग इतना था कि आप आजीवन यह कहते रहे कि –

तुधु आगै अरदासि हमारी जीउ पिंडु सभु तेरा ॥
कहु नानक सभ तेरी वडिआई कोई नाउ न जाणै मेरा॥
अंग – 383

धार्मिक फिल्में बनाकर प्रचार करने के लिए सन्त महाराज राड़ा साहिब वालों के द्वारा माया की पेशकश को स्वीकार न करते हुए आपने सविनम्र विनती की कि आप मेरी कमाई में ही बरकत डाल दो ताकि मैं अपनी कमाई में से ही प्रचार कर सकूँ। समय आने पर आपने अपने खर्चे के द्वारा भावार्थ अपनी निजी माया के द्वारा ही प्रचार शुरू

किया तथा फिल्में बनाईं। इस वचन का जिक्र सन्त महाराज राड़ा साहिब वालों ने अपनी निजी डायरी में किया था।

गुरमति प्रचार तथा परोपकार के केन्द्र रतवाड़ा साहिब की स्थापना

जुलाई 1986 ई. में चण्डीगढ़ के नजदीक कण्डी क्षेत्र में आपने गुरमति प्रचार के केन्द्र को स्थापित किया।

यह केन्द्र रतवाड़ा साहिब के नाम से बहुत जल्दी ही संसार भर में सुविख्यात हो गया। 'जिथै जाइ बहै मेरा सतिगुरू सो थानु सुहावा राम राजे।।' श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के प्रकाश, श्री आखण्ड पाठ साहिबान की श्रृंखला, जपुजी साहिब मूलमन्त्र तथा गुरुमन्त्र के जप की निरन्तरता बनी। सेवा व सिमरन के कुम्भ शुरू हुए। ईश्वरीय वाणी की खुशबू चौगिरदे में देश व विदेशों तक फैली। खुशबुओं द्वारा खिंचे हुए भौंरे आने शुरू हो गए। चौबीसों घंटे गुरू के लंगर शुरू हो गए। इस पावन स्थान पर सेवादार दिन रात सेवा भाव से जुट गए। धार्मिक दीवान इतवार, पूर्णमाशी व संक्रान्ति के शुरू हो गए। सारे इलाके में गुरमति का प्रचार व प्रसार शुरू हो गया। लोगों का काया-कल्प होने लग पड़ा। स्वयं को पिछड़े हुए महसूस करने वालों को अपने वचनों द्वारा आपने पहले दर्जे के शहरी होने का अहसास दिलवाया। अनेकों प्राणी नशों आदि की बुरी आदतों को छोड़कर, खण्डे बाटे का अमृतपान कर गए तथा श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के साथ जुड़ गए। गुरमति का प्रचार सारे पंजाब भर में फैलकर पूरे भारतवर्ष में तथा विदेशों तक फैला। 'विश्व गुरमति रूहानी मिशन चैरिटेबल ट्रस्ट' अस्तित्व में आ गया, फलस्वरूप आपने अपना सब कुछ ट्रस्ट के नाम करवा दिया। अब निजी लाभ व लालच को पूर्णरूपेण समस्त करके गुरू परायण मुख्य मार्ग शुरू हो गया जैसे कि गुरू जी का कथन है 'कबीर मेरा मुझ महि किछु नही जो किछु है सो तेरा।।' (अंग - 1375) इस सिद्धान्त का अक्षरशः पालन होने लग पड़ा। गुरुद्वारा ईशर प्रकाश का सुन्दर दरबार बन गया। दीवानों के लिए विशाल शेड बन गए। बाद में शिक्षण संस्थाएँ अस्तित्व में आ गईं, जिनमें जायज फीसों के द्वारा गुणवत्ता वाली शिक्षा उपलब्ध करवाई जाने लग पड़ी, शारीरिक रोगियों के लिए निःशुल्क अस्पताल शुरू हो गया। वर्तमान समय में निःशुल्क सिलाई व कढ़ाई प्रशिक्षण केन्द्र, निःशुल्क नेत्र आप्रेशन शिविर, निःशुल्क कैंसर चेक-अप शिविर आदि अनेकों परोपकारी कार्य संगत के लिए वरदान सिद्ध हो रहे हैं। ट्रस्ट के वर्तमान मुखी सन्त बाबा लखबीर सिंह जी, ट्रस्ट के अन्य सहयोगियों, सदस्यों, पदाधिकारियों व संगत के सहयोग से समस्त परोपकारी कार्यों की निरन्तरता को बुलन्दावस्था में बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। निःसन्देह हम यह कह सकते हैं कि रतवाड़ा साहिब का हरा-भरा चौगिरदा नाम-वाणी की खुशबुओं से संसार भर को शरशार कर रहा है। यह सब कुछ श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी की कृपा की बदौलत ही सम्भव है।

निःसन्देह आप जी का सारा जीवन सुगन्ध से भरा हुआ तथा खुशबुओं को बाँटने वाला था। परम सम्माननीया बीजी ने भी जीवन के समस्त पड़ावों पर आजीवन आपका साथ दिया। अतः आज भी उनकी सुगन्ध, उन्हें प्यार करने वालों में से आ रही है। आज भी उनकी पावन याद में लाखों लोग देश व विदेशों से रतवाड़ा साहिब की पावन भूमि पर पहुँच कर, श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के सिद्धान्तों व नाम-वाणी के साथ जुड़ रहे हैं। यही है - सगन्धित जीवन की निशानी। यथा -

इह नीसाणी साध की जिसु भेटत तरीऔ ॥

अंग - 320

गुरू जी हम सब पर कृपा करें ताकि हम सबको गुरवाणी की सुगन्ध व प्यार भरा जीवन प्राप्त हो जाए।

आवश्यक निवेदन

रिन्युवल का चन्दा भेजने के लिए मेंबरशिप नम्बर (सदस्यता संख्या) तथा रिन्युवल तारीख (पुनर्नवीनीकरण तिथि) का व्यौरा अवश्य दिया जाए तथा यह भी बतलाया जाए कि चन्दा, रिन्युवल के लिए है अथवा नई मेंबरशिप प्राप्त करने के लिए प्रेषित किया गया है।

यदि किसी प्रेमी पुरुष ने आत्म मार्ग मैगजीन के लिए चन्दा जमा करवाया हो और उसे मैगजीन न पहुँच पा रहा हो, तो उसे जमा करवाई गई रकम का रसीद नम्बर आदि लिखकर आत्म मार्ग कार्यालय से सम्पर्क करना चाहिए।

'आत्म मार्ग' एक धार्मिक मैगजीन है, इसके अन्तर्गत श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी की वाणी छपी हुई होती है, इसलिए समस्त पाठक बन्धुओं से अनुरोध है कि कृप्या इसका प्रयोग रद्दी पेपर की भांति न किया जाए। यदि आप पुराने मैगजीन को रखना नहीं चाहते हैं तो उन्हें हमारे किसी भी वितरण केन्द्र पर सहर्ष वापिस कर सकते हैं।

गुरु नानक आगमन
(श्री गुरु नानक चमत्कार)

पद्म भूषण डा. भाई वीर सिंह जी

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक जूलाई, पृष्ठ - 43)

इस तरह से हास्य-परिहास करते हुए आप आबादी या ग्रामीण क्षेत्र में प्रवेश कर गए। जब आप एक घर के आगे जाकर खड़े हुए तो उस घर में रहने वाले ने प्रसन्नता जाहिर की कि आओ महात्मा जी! आपका स्वागत है, यह घर आपका ही है, यहाँ पर आकर विश्राम करो और रात्रि में आराम करो तथा जो कुछ भी घर में खाने-पीने की व्यवस्था है, उसके अनुसार ग्रहण करो, सब कुछ आपके लिए हाजिर है। रात्रि में आराम करने के बाद आप आगे प्रस्थान कर जाना। गुरू जी मुस्कुराए और आपने वहीं पर अपना टिकाना कर लिया। भाई मरदाना भी बैठ गया लेकिन उसका चित्त खिला नहीं बल्कि उदास ही रहा। शेष ठगों को भी पता लग गया, फलस्वरूप वे सब उस ठग को एक तरफ ले गए और पारस्परिक बातचीत करने लग पड़े कि -

"जोत लिलार बड़ी इह के धन है
बहुं पास चलयो किह थाईं।
लेहु सभै ना दुरावहु सो हम भोर बई धन लेहि बटाई।
नानक प्रकाश

इस प्रकार से अपनी योजनाएँ बनाकर वे अपने-अपने घरों को चले गए। अब जिनके घर में गुरू जी ठहरे हुए थे, वह तरकीबें सोचने लग पड़ा कि जिस समय ये रात्रिकाल में सो जाएँगे तो उस समय मैं इनके वस्त्रादि की तलाशी कर लूँगा लेकिन परमात्मा का ऐसा करिश्मा हुआ कि वह स्वयं जैसे ही अपनी चारपाई पर लेटा तो गाढ़ी नींद में सो गया और जो उसके साथीगण थे, जिन्होंने उसकी इस चोरी के कार्य में मदद करनी थी, भी गाढ़ी नींद में सो गए। वे इतनी गाढ़ी नींद में सोए कि सूर्योदय होने के काफी समय बाद तक भी किसी की नींद नहीं खुली। श्री गुरू जी तथा भाई मरदाना जी काफी देर रात तक कीर्तन करते रहे और उसके बाद आप सो गए तथा ब्रह्ममुहुर्त में उठकर आपने कुएँ पर स्नानादि किया और अपने परमात्मा के रंगों को देखते हुए तथा सभी को सोते हुए छोड़कर अपने मार्ग पर चल पड़े। रास्ते में जाते हुए भाई मरदाना जी ने पूछा, महाराज जी! इन सब लोगों को यह कैसी नींद आई हुई थी? आपने फुरमान किया, भाई मरदाना! यह उस साईं द्वारा डाली गई नींद है जो कि सभी बुरे आचरण वालों को घेरे रखती है। भोर में जागकर उसकी याद में बैठना तो उसने अपने प्यारों को ही दिया हुआ है क्योंकि बुरे आचरण वाले तो बुरे कार्यों के लिए ही जागते हैं और फिर थककर ब्रह्ममुहुर्त में सो जाते हैं।

गुरू जी तथा मरदाना जब कुछ दूरी पर निकल गए तो फिर उन ठगों की नींद खुली। अब सारे ठग उस ठग के घर पर आकर एकत्र हो गए, जिस घर में आप ठहरे हुए थे। वे कहने लगे कि लाओ भाई जो धन-माल तुमने उनसे लूटा है उसमें से हमारा हिस्सा हमें दे दो। वह कहने लगा, प्यारे साथियो जिस प्रकार से तुम लोग अभी जागे हो उसी प्रकार से मैं भी अभी जागा हूँ और वे मुसाफिर तो हमारे सोए हुए समय में ही यहाँ से प्रस्थान कर गए। रात में तो न जाने हमारे ऊपर कैसे नींद पड़ी कि हमारी आँख ही नहीं खुली। हमारे साथ तो ऐसे हो गया जैसे कि किसी ने हमें भांग पिला दी हो।

अब दूसरे ठग, उस ठग की बात मानने के लिए तैयार नहीं थे। वे कहने लगे कि तुमने सारा धन-माल, इधर-उधर कहीं छिपा दिया है और उन मुसाफिरों को भी मार कर इस तरह से ठिकाने लगा दिया है कि जिसका किसी को कुछ भी पता न चल सके। इस तरह से उनके बीच फसाद बढ़ गया लेकिन वे मानने के लिए राजी नहीं हो रहे थे। वह बार-बार अपने कानों को हाथ लगाकर उन्हें विश्वास दिलाने की कोशिश करता रहा लेकिन वे मानने के लिए राजी ही न हुए। वे कहने लगे -

हाथ लगयो बहुतो धन तोकहु,
लालच धार के लीन छपाई।
सो नहि छोडहि कैसे करो,
तुम पास हमारे ते लेत सदाई।
किऊं अब तूशन बैठ रहाँ?

सभ काढि निकेत ते देहु दिखाई।   नानक प्रकाश

उस ठग ने तब देखा कि ये लोग तो मेरी कोई भी बात मानने के लिए राजी ही नहीं हैं तो फिर उसने अपने पीर ठग की कसम खाई। इस पर उन सबको विश्वास आ गया। अब वे सभी लोग गाँव के बाहर की तरफ तलाश करने लग पड़े और कुछ तगड़े नौजवान वहाँ पर मौजूद रास्ते की तरफ दौड़ लिए ताकि यदि वे मुसाफिर कहीं दूर निकल गए हों तो वे उन्हें दबोच सकें। इस प्रकार कुछ कोस की दूरी पर जाकर वे ठग नवयुवक, गुरू जी तथा भाई मरदाना जी को जा मिले।

जब ठगों ने दूर जाते हुए उन्हें देख लिया तो वे ललकार कर बोले, रुक जाओ! जा कहाँ रहे हो?

आवाज सुनते ही जगत का उद्धार करने वाले गुरू जी ने पीछे मुड़कर देखा और वहीं पर रुक गए। मरदाना भी अपनी तरफ कुछ भयानक आदमियों को आते हुए देखकर कुछ भयभीत हुआ और कहने लगा कि महाराज जी! ये तो लट्ठमार लोग दिखाई पड़ रहे हैं। हमारे पास तो कुछ भी नहीं है, हम इन्हें बतला देते हैं ताकि ये हमारा पीछा छोड़ सकें। मेरे पास रवाब है जो कि इनके किसी काम का नहीं हैं, यदि उसे भी लेना चाहें तो वह भी लेकर हमारा पीछा छोड़ें। श्री गुरू जी भाई मरदाना जी की बात को सुनकर मुस्कुराए और कहने लगे, मरदाना! देखो! करतार के रंग! ये हमें ठगते हैं अथवा स्वयं ठगे जाते हैं? जिसने इन्हें हमारे पीछे लगाया है, वह स्वयं हमारी रक्षार्थ भी आया ही समझो।

मरदाना अच्छा सत्संगी पुरुष था लेकिन उसके अन्दर वह धैर्य नहीं था जो कि श्री गुरू जी के अन्दर विद्यमान था। अतः वह गुरू जी के वचन सुनकर कुछ धैर्य में आ गया तथा उसके मन में जो उतावलापन था, वह कुछ कम हो गया। अब वह साईं की याद में अपने मन को जोड़ने लगा, साथ ही वह शीघ्रता से गुरू जी के बिल्कुल पास में जाकर खड़ा हो गया।

उन ठगों ने आगे बढ़कर गुरू जी को कुछ अपशब्द भी बोले, लेकिन ज्यों-ज्यों वे गुरू जी के पास में आते गए त्यों-त्यों उनका हृदय परिवर्तन होता चला गया। जब वे बिल्कुल पास में आकर खड़े हो गए तो उसके बारे में पुरातन जन्म साखी में लिखा है कि 'तबि दरशन देखणे नाला सभि आइ अंदरहु निबल भऐ।'

जब वे घेरा डाल कर खड़े हो गए तो सतगुरू जी ने पूछा कि तुम लोग कौन हो? उनमें से एक ने कहा कि हम लोग पहले मारा करते हैं और बाद में लूटा करते हैं, हम इस श्रेणी के ठग हैं। हमें पता है कि तुम लोग धनवान लोग हो, रात में तुम लोग हमारे पास आराम से रहे और सुबह होते ही चुपके से खिसक आए। अब हमने, तुम्हें मार देना है और तुम्हारे पास जो कुछ भी है उसे लूट लेना है।

मरदाना कुछ बोलना चाहता था लेकिन वह गुरू जी की पूर्ण स्थिरता को देखकर रुक जाता था।

गुरू जी ने ठगों की तरफ देखकर कहा, ठीक है, तुम लोग हमें मार डालो, बिल्कुल मार डालो, लेकिन एक काम करना कि तुम, हम लोगों को मारकर यूँ ही फेंक न जाना। देखो! यहाँ पर लकड़ी तो तमाम पड़ी है, इसलिए हमें मारकर इन लकड़ियों पर रखकर जला डालना ताकि शरीर भस्म के रूप में परिवर्तित हो जाए। यह बात तुम लोगों के लिए भी अच्छी है, क्योंकि जब शरीर समूल नष्ट हो जाएंगे तो फिर कोई हम लोगों की मृत्यु का सुराग भी नहीं लगा पाएगा।

एक ठग ने कहा ठीक है, दाह संस्कार कर देते हैं लेकिन दूसरा ठग बोला, कौन ऐसे झंझट में पड़े? मार कर किस्सा खत्म करो, कौन आग ढूँढ़ता फिरेगा और फिर इनका संस्कार करेगा?

एक अन्य ठग ने कहा, हमारे दिल ने कभी ऐसी असहजता महसूस नहीं की थी जो कि हम लोगों को आज हो रही है, इसलिए एक बार और सोच लो, तब मारना। यह भी देखो कि आज तक कभी किसी ने हमें इतनी खुशी से कहा था कि ठीक है, हमें मार डालो, हमें कोई ऐतराज नहीं है। मरने के समय तो सभी रोते-बिलखते हैं और हाथ-पैर जोड़ते हैं। कभी-कभी कोई ऐसा बहादुर मिलता है जो कि हम लोगों का मुकाबिला करने की कोशिश करता है। जिसे कि बड़ी कुशलता से मारना पड़ता है। सभी लोग यही कहते हैं कि हमें न मारो। हमें न मारो। दूसरी तरफ यह तो सहर्ष मृत्यु को कबूल रहा है और मृत्यु की तरफ से इसे कोई डर नहीं लग रहा है। मैं तो यही कहूँगा कि इसकी सारी बात को ध्यान से सुनो और फिर यदि इन्हें मारने के बाद इनका दाह-संस्कार कर देंगे तो फिर इनमें हमारा भी तो भला ही है। संस्कार के बाद तो इनका नामो-निशान मिट जाएगा और यदि हम यह सोचें कि ये बहाना कर रहे हैं तो फिर ये हम लोगों के पास से भागकर जाएंगे कहाँ? हम लोग तो गिनती में कितने अधिक और फिर हमारे पास कितने खतरनाक शस्त्र हैं। क्यों न ऐसे करें कि एक-दो लोग जाकर कहीं से आग

ले आएँ और बाकी लोग इन्हें यहीं पर घेरा डाल कर खड़े रहें।

अब उन्होंने यही निर्णय ले लिया। दो लोग आग लेने के लिए चले गए वहाँ पर कुछ दूरी पर एक चिता जल रही थी यानि कि श्मशान घाट में किसी का संस्कार किया गया था। उन दोनों ठगों ने चिता में से आग ले ली और वापिस लौटने लगे लेकिन उन्होंने देखा कि वहाँ पर (कुछ ही कदम की दूरी पर) कुछ लोगों का आपस में विवाद चल रहा है। ये भी वहाँ पर खड़े होकर पूछने लगे कि क्या बात हो गई है? उनमें से एक व्यक्ति बोला बन्धु! यह जो व्यक्ति है दरअस्ल यह उस व्यक्ति की आत्मा है, जिसके शरीर का वह संस्कार हो रहा है, जिसकी चिता में से तुम लोग आग लेकर आए हो। यह बहुत ही बुरे कार्य करने वाला व्यक्ति था और इसने जिस प्रकार के बुरे कार्य आजीवन किए हैं, निश्चित रूप से उनके प्रतिफल स्वरूप इसे नर्क ही मिलना है। भोगों में प्रवृत्त रहना यानि कि भोगों में रुचियों का होना लेकिन भोग्य पदार्थ प्राप्त न होने, अन्धकार, नंगापन तथा दुख आदि हमारे रंग हैं, जिन्हें कि इस आत्मा ने स्वयं हासिल किया है। ये सारे दुख इस आत्मा ने भोगने हैं और हम लोग इस आत्मा को लेकर जाने लगे थे और इधर ये रामदूत आ गए हैं, जबकि हम लोग यमदूत हैं और ये रामदूत, अब हम लोगों से छीन कर इस आत्मा को अपने साथ लेकर जा रहे हैं?

रामदूत – यह बात तो ठीक है कि यह आत्मा महापापी थी और इसके कर्मों के फलस्वरूप इसे कुम्भी नर्क में ही निवास मिलना था लेकिन जिस गुरू परमेश्वर को तुम लोग मारने के लिए आए हो उसकी दृष्टि इस चिता की तरफ पड़ गई है, जिसके फलस्वरूप इसके सारे बुरे कर्मों का हिसाब समाप्त हो गया है और अब यह बैकुण्ठ जाकर सुख प्राप्त करेगा।

ठग – अच्छा! जिसे हम लोग मारने जा रहे हैं, वह कौन है?

रामदूत – वह गुरू परमेश्वर गुरू नानक है जो कि संसार का कल्याण करने के लिए आया है।

यह सुनकर ठग घबरा गए और उठकर दौड़ गए तथा अपने साथियों के पास पहुँच गए। वहाँ जाते ही वे गिड़गिड़ाते हुए श्री गुरू जी के चरणों पर गिर पड़े और अनुनय-विनय करने लगे कि हे गुरू-परमेश्वर! हमें क्षमा कर दो।

अन्य ठग उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो गए और उन ठगों से कहने लगे कि तुम लोगों को क्या हो गया है? तुम लोगों की शूरवीरता कहाँ चली गई है?

चिता के पास से लौटकर आया एक ठग – मित्रो! जिसे हम लोग मारने लगे हैं, यह गुरू-परमेश्वर है। जीवों को मारकर तो हमें सजा ही मिलेगी लेकिन गुरू परमेश्वर को मारकर हम लोगों का क्या बनेगा, यह तो सोचो?

पहला ठग – क्या हुआ? बात तो बताओ? उस समय उन ठगों ने (जो चिता के पास से आग लेने के लिए गए थे) सारी वार्ता सुनाई। वार्ता को सुनकर सारे ठगों के हृदय में बहुत घबराहट उत्पन्न हो गई, फलस्वरूप सारे ही गुरू चरणों में गिर पड़े और कहने लगे –

निंद जीवका हुती हमारी।
मारहि जीवन बिना बिचारी।
तुम समरथ संत सुखदाई।
आपणी कला न हमहि दिखाई। *नानक प्रकाश*

जिस समय से दूसरे ठग आग लेने के लिए गए थे, उसी समय से गुरू जी एक स्थिर पर्वत की भांति खड़े थे। उनकी दृष्टि एक समान थी और चेहरा किसी तेज के साथ चमक रहा था, वे नेत्र भी झपक नहीं रहे थे, श्वासों के भी आने-जाने का पता नहीं लग पा रहा था कि श्वास आ रहे हैं या नहीं। मरदाना इन सारे रंगों को देख रहा था। वह प्यार में जुड़ा हुआ लेकिन भयभीत होकर खड़ा था।

अब सारे ठगों पर भय का बहुत ही प्रभाव पड़ रहा था, फलस्वरूप वे गुरू जी के चरणों से लिपट कर अनुनय-विनय कर रहे थे। उधर गुरू जी का चेहरा दमकें मार रहा था।

कैसा अद्‌भुत दर्शन है जो मारने के लिए आए थे, वे गुरू जी के चरणों में लेट रहे हैं और अनुनय-विनय कर रहे हैं। गुरू जी न तो पहले ही डरे थे और न ही अब किसी तरह से पसीज रहे हैं। आप अडोल खड़े हैं और तेज की किरणें आपके चेहरे से इधर-उधर पड़ रही प्रतीत हो रही हैं और वे विनय कर रहे हैं –

बखशहु बड़े करे अपराधू॥
परऊपकारी हैै जग साधू॥ *नानक प्रकाश*

"चलहु ग्राम स्री प्रभू! बहोरी"
बिनती सरब करैं कर जोरी॥ *नानक प्रकाश*

सारे ठग हाथ जोड़कर विनय कर रहे हैं कि हे प्रभु जी! एक बार आप पुनः हमारे गाँव चलो हमारे सारे गाँव

का उद्धार करो। हम लोग तो बहुत बड़े पापी हैं। हमारा तो सारा जीवन और सारा समय ही लोगों को मारने और लूटने में ही बीतता है हम लोगों को ठीक मार्ग पर डालो। हम लोग बड़े पापी हैं और किसी महपरुष की कृपा के बिना हमारा कल्याण असम्भव है। छोटे-मोटे साधु-सन्त तो हमने बहुत देखे और लूटे हैं लेकिन आज आप महापुरुष मिले हो। समुद्र की आग को समुद्र ही सम्भाल सकता है। जब आग जंगल में लगी हुई हो तो फिर मूसलाधार वर्षा ही उसे शान्त कर सकती है। आप हम लोगों के गाँव चलो, कुछ दिन वहाँ पर रहो ताकि हमारे सारे भाईचारे का उद्धार हो सके।

यह विनती सुनकर श्री गुरू जी के नेत्र उन सबकी तरफ घूमे, चेहरे पर नम्रता का रंग आया और आपके पसीजने का रंग भी चेहरे पर झलकने लगा। इसके बाद आपने वचन किया, तुम लोग चलो हम आते हैं। गुरू जी के चरणों पर दण्डवत प्रणाम करते हुए ठग विदा हुए। आप कुछ देर वहाँ पर बैठे रहे, उसके बाद कुछ समय मरदाना जी ने कीर्तन किया, तत्पश्चात जगत का कल्याण करने वाले गुरू जी पुनः उसी गाँव की तरफ लौट पड़े।

दीन भए अवलोकि गुसाईं॥
हटे ग्राम दी किश तिस थाईं॥ *नानक प्रकाश*

मरदाना - पातशाह जी! यह कौन सी घटना घटित हुई है? ये लोग तो हम लोगों को मारने के लिए आए थे और आप भी मरने के लिए तैयार हो गए थे। मेरा मन कर रहा था कि हम सारा कुछ दिखला दें कि हमारे पास तो कुछ भी धन-माल नहीं है, इसलिए तुम लोग व्यर्थ में ही हमें मारना क्यों चाह रहे हो? लेकिन आपसे डरते हुए मैंने कुछ भी नहीं कहा।

गुरू जी - मरदाना! ये बहुत ही भयानक प्रकार के ठग हैं, ये तो पहले व्यक्ति को मारते हैं, उसके बाद ही उन्हें लूटते हैं। ये तो किसी की बात भी सुनना पसन्द नहीं करते हैं। नित्य प्रतिदिन पाप कर्म कर-करके इनके हृदय पत्थर हो चुके हैं। बस परमात्मा ही इनसे बचा सकता है।

मरदाना - यदि आप शक्ति न दिखाते तो इन्होंने कहाँ टलना था? यह बात तो ठीक है कि ये बहुत ही भयंकर प्रकार के ठग हैं।

गुरू जी - हमने शक्ति क्या दिखानी थी, हमने तो हार ही मान ली कि अच्छा भाई हमें मार डालो लेकिन हार को जीत में बदल देना परमात्मा का कार्य है।

मरदाना - धन्य है तुम्हारी हार जिस के पैर सदैव जीत को ही चूमने पड़ते हैं। बहुत बड़ी लीला थी यह भी।

गुरू जी - मरदाना! उस करतार के रंग देखो, वह अपने भक्तों की स्वयं ही लाज रखता है। वह अपने प्यारों के साथ स्वयं आकर खड़ा हो जाता है। उसकी यह इच्छा थी कि इनका उद्धार हो। अन्य लोग, जिन्हें उनके द्वारा कष्ट मिलना था, वह इनके कोपभाजन से छूट सके। यही कारण है कि वह हमें इनकी बस्ती में ले आया अथवा ये हमारे पीछे आ गए क्योंकि परमात्मा ने इनका कल्याण करवाना था। दूसरी तरफ वह हमारी रसना पर आ बैठा, फलस्वरूप हमने भी हार मान ली और दाह संस्कार के लिए कह दिया। जब आग का पता इन्होंने पूछा ता हमारी नजर उस चिता पर पड़ गई। साईं की कृपा ऐसी हुई कि उस पापी जीव के सारे पाप मिट गए और यह लीला गुप्त सृष्टि में इस प्रकार से घटित हो गई कि ठगों जैसे पापियों को भी इस प्रकार से सारी घटना दिखाई पड़ गई जैसे कि उनकी आँखों के सामने ही सारा कुछ घटित हो रहा हो। यह सब उसी परमात्मा की, बख्शनहार की लीला है कि उन पापियों की आँखों के सामने सारी घटना को उपस्थित करे उन्हें भयभीत कर दिया। बहुत बड़े-बड़े पाप कर-करके जो पत्थर-दिल हो चुके थे वे इतने भयभीत हो गए कि वे हमारे प्राणों के प्यासे भी न रहे और अपने द्वारा किए गए पापों के भय में ही आ गए।

मरदाना - आपकी बात पूर्णतः सत्य है लेकिन ये लीलाएँ आम लोगों के लिए घटित नहीं होती हैं, बहुत सारे साधुओं व ज्ञानियों के लिए भी घटित नहीं होती हैं। धन्य है आपकी आस्था व निष्ठा। ये लीलाएं आपके लिए ही घटित होती हैं जो कि परमात्मा की गोद का बच्चा है अथवा परमात्मा ही आपके रूप में शरीरधारी हो रहा है। धन्य है तुम्हारी हार जो कि हमेशा जीत में ही बदल जाती है। कितने भोलेपन से आपने कह दिया था कि कोई बात नहीं आप लोग हमें मार डालो। उस समय मेरे अन्दर एक अजीब प्रकार की झरनाहट सी छिड़ गई थी कि मेरे कोमल हृदय वाले स्वामी जी ने यह क्या कह दिया है लेकिन मुझे क्या पता था कि जो हार आपने स्वीकार की है, इसकी वजह से अर्श की सारी शक्तियों ने हिल जाना है और उस परम पिता परमात्मा ने अपने दुलारे बच्चे का बाल भी बाँका नहीं होने देना है और फिर न केवल वह अपने प्यारे की जीत ही

करवाएगा बल्कि वह उन पापियों का कल्याण भी करवाएगा। कृपा करके आज तो बतला दीजिए कि इन लीलाओं को अन्जाम देने वाले वह हैं अथवा आप स्वयं ही हो। वह, आप ही हो न जो कि शरीर धारण करके अद्‌भुत प्रकार की लीलाएँ कर रहे हो? कभी तो आप अपने डूम (मिरासी) को इस रहस्य की बात बतला दो। यह सुनते ही आपके नेत्र बन्द हो गए और उस दिव्य गले में से एक हृदयवेधक स्वर माझ राग में इस प्रकार से निकल पड़े–

हम जेर जिमी दुनीआ पीरा मसाइका राइआ ॥
मे रवदि बादिसाहा अफजू खुदाइ ॥
एक तूही एक तुही ॥ 1 ॥ मः 1 ॥
न देव दानवा नरा ॥ न सिध साधिका धरा ॥
असति एक दिगरि कुई ॥ एक तुई एक तुई ॥ 2 ॥ मः 1 ॥
न दादे दिहंद आदमी ॥ न सपत जेर जिमी ॥
असति एक दिगरि कुई ॥ एक तुई एक तुई ॥ 3 ॥ मः 1 ॥
न सूर ससि मंडलो ॥ न सपत दीप नह जलो ॥
अंन पऊण थिरु न कुई ॥ एकु तुई एकु तुई ॥ 4 ॥ मः 1 ॥
न रिजकु दसत आ कसे ॥ हमारा एकु आस वसे ॥
असति एकु दिगर कुई ॥ एक तुई एकु तुई ॥ 5 ॥ मः 1 ॥
परंदीए न गिराह जर ॥ दरखत आब आस कर ॥
दिहंद सुई ॥ एक तुई एक तुई ॥ 6 ॥
मः 1 ॥
नानक लिलारि लिखिआ सोइ ॥ मेटि न साकै कोइ॥
कला धरै हिरै सुई ॥ एकु तुई एकु तुई ॥ 7 ॥
अंग – 144

यह शबद गाया जा रहा है। मरदाना एक तरफ रबाब बजा रहा है और दूसरी तरफ उसकी आँखों से अश्रुधारा भी प्रवाहित हो रही है। जिस परमात्मा के अस्तित्व को सही करने के लिए बुद्धिमान संसार तड़प रहा है, जिस परमात्मा के प्रत्यक्ष दिखाई न पड़ने के कारण अनेकों बुद्धिजीवियों की बुद्धि आश्चर्यचकित अवस्था में तथा किसी-किसी की इन्कार अवस्था में जा रही है, उस परमात्मा का प्रत्यक्ष अस्तित्व तथा उसकी झरनाहटों की मरदाने को स्पष्ट रूप से अनुभूति हो रही है। 'ऐक तुई एक तुई' की मरदाने को प्रत्यक्ष अनुभूति हो रही है।

शबद का भोग पड़ गया। श्री गुरू जी ने मरदाना जी के कन्धे पर हाथ रख कर उसे हिलाया और उठकर खड़े हो गए तथा बोले, चल मरदाना! देखो, उस करतार के रंग।

मरदाना – धन्य है तुम्हारा करतार और धन्य है तुम्हारी निष्ठा। चलो जी, लेकिन जाने के बाद यदि अन्य ठग न माने तो कहीं दोबारा फँस ही न जाएँ?

गुरू जी – मरदाना! तुमने देखा नहीं उस 'रक्षक' ने हमारी रक्षा कैसे की? किस प्रकार से फँसे हुओं को बाहर निकाल लिया? यदि दोबारा भी उसने फँसाना होगा तो वह उसका भी कोई हल स्वयं ही निकालेगा। हम लोग क्या हैं? हम लोग तो काठ की पुतलियाँ हैं। जो हमें खिलाने वाला है, वह जाने कि उसने हमें कैसे खिलाना है। बस हमारा तो यह कार्य है कि हम सदैव आस्था और निष्ठा में रहें तथा नाम का सिमरन करें। अपने बिरद की लाज वह स्वयं ही रखेगा। वह जो कुछ भी करता है, अच्छा ही करता है। यह कहते हुए श्री गुरू जी ने उसी गँव की तरफ पुनः प्रस्थान कर दिया और आपके पीछे-पीछे मरदाना जी भी चल पड़े।

'चलता'

(पृष्ठ 34 का शेष)

इस प्रकार से साधु संगत जी! यह मनुष्य शरीर हमें प्राप्त हुआ है और न जाने कितने समय बाद हमें यह प्राप्त हुआ है तथा इसके अन्दर जो परमात्मा बैठा हुआ है उससे हमने मिलना है।

आत्म मार्ग मैगजीन के अन्दर इस प्रकार के लेख आते हैं, उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ो और पढ़ने के बाद इन्हें अपनी याद के अन्दर बसाओ तथा इनके अनुसार अपने जीवन को ढालो। यदि हम ऐसा करेंगे तो फिर हमें यह समझ पड़ जाएगी कि परमात्मा तो हमारे अन्दर है और वह किस प्रकार से मिल सकता है। फिर पास में रहता हुआ परमात्मा अपनी दया करके स्वयं ही अपनी तरफ खींच लिया करता है अतः शरीर के सभी अंगों को सेवा में लगाओ तथा इन्हें सफल करो। परमात्मा को अपनी याद में बसाओ, भजन-बन्दगी करो। समय निकल जाता है और निकला हुआ समय कभी वापिस नहीं आता है, अतः इसे सफल कर लो।

अब समय इजाजत नहीं देता है, इसलिए अब यहीं पर समाप्ति है।

गुरवाणी अर्थ भण्डार

सन्त हरी सिंह जी 'रन्धावे वाले'

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक सितम्बर, पृष्ठ - 49)

सिरीरागु महला 3
गोविदु गुणी निधानु है अंतु न पाइआ जाइ॥

हे भाई! वह गोबिदु = पृथ्वी की रक्षा करने वाला प्रभु सारे गुणी = गुणों का निधानु = खजाना है, उस वाहिगुरू जी के गुणाों का अन्त कोई भी पा नहीं सकता है।

कथनी बदनी न पाईऐ हउमै विचहु जाइ॥

कथनी = कथा करने से तथा बदनी = कवि बनकर चुतराईपूर्वक कविता का गायन करने से अथवा बदनी = मुँह के द्वारा कथनी = कथन करने से भी उस प्रभु जी का अन्त नहीं पाईऐ = प्राप्त किया जा सकता है। तो फिर परमात्मा को कैसे पाया जा सकता है? उत्तर – जब हउमै व्यक्ति के अन्दर से चली जाए तब परमात्मा को पाया जा सकता है।

सतगुरि मिलिऐ सद भै रचै
आपि वसै मनि आइ॥1॥

सतगुरू के साथ मिलकर सदैव प्रभु जी के भय में लगा रहे, तो फिर स्वयं ही परमात्मा आइ = आकर मन के अन्दर बस जाता है।

भाई रे गुरमुखि बूझै कोइ॥

हे भाई! कोइ = कोई विरला गुरमुख ही इस बात को बूझै = बूझता है या समझता है।

बिनु बूझे करम कमावणे
जनमु पदारथु खोइ॥1॥रहाऊ॥

गुरू साहिब के माध्यम से बिना समझे या बूझे जो नित्य या नमित्त कर्म करने हैं, इनके द्वारा जन्म पदार्थ को व्यर्थ में ही गंवाना है, भावार्थ जो प्रभु प्राप्ति के लिए बेशकीमती जन्म पदार्थ प्राप्त हुआ है, सतगुरू के उपदेश के बिना, अन्य फोकट पदार्थों को करते रहने से वह व्यर्थ ही चला जाता है-

जिनी चाखिआ तिनी सादु पाइआ
बिनु चाखे भरमि भुलाए॥

जिनी = जिन्होंने सतगुरू के उपदेश के माध्यम से रस का रसास्वादन किया है तिनी = उन्होंने उसके सादु = स्वाद को पाया है, अन्य लोग, जिन्होंने नाम रस को चाखे = चखा नहीं है, वे सब भ्रमों में भूले हुए हैं।

अंम्रितु साचा नामु है कहणा कछू न जाइ॥

अमृत तो प्रभु जी का सच्चा नाम ही है। इस नाम रूपी अमृत के बारे में कछू = कुछ भी कहणा = कहा नहीं जाइ = जा सकता है, भावार्थ इसकी महिमा असीम है। इसके बराबर देवताओं का अमृत, कांता के होठों का अमृत, चन्द्रमा की किरणों का अमृत, समुद्र का अमृत या पाताल का अमृत आदि कोई भी पहुँच नहीं सकता है, ऐसा है यह नाम रूपी बहुमूल्य अमृत।

पीवत हू परवाणु भइआ
पूरै सबदि समाइ॥2॥

जो भी पुरुष इस नाम रूपी अमृत को पीता है, वह पीते ही परवाणु = स्वीकार्य हो जाता है और वह पूरे गुरू के शब्द के अन्दर समाइ = लीन हो जाता है।

आपे देइ त पाईऐ होरु करणा किछू न जाइ॥

हे बन्धु! यदि सतगुरू जी स्वयं ही कृपा करके नाम रूपी बहुमूल्य वस्तु प्रदान कर दें तो ही फिर नाम पाया जा सकता है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय नहीं करणा = किया जा सकता है।

देवण वाले कै हथि दाति है गुरु दुआरै पाइ॥

हे भाई! देवण वाले = सतगुरू जी के हाथ में ही यह नाम रूपी वस्तु है, यही कारण है कि यह बहुमूल्य वस्तु गुरू जी के माध्यम से ही पाइ = प्राप्त की जा सकती है।

जेहा कीतोनु तेहा होआ जेहे करम कमाइ॥3॥

हे बन्धु, जेहा = जिस प्रकार की किसी जीव ने श्रद्धाभावना कीतोनु = धारण की हुई है, तेहा = उसी प्रकार का फल उस जीव को प्राप्त होआ = हुआ है तथा जेहे = जिस प्रकार के कर्म वह कमाए = भविष्य में करेगा उसी प्रकार के फल उसे प्राप्त हो जाएँगे। जो भी जीव उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ कर्म करते हैं, उसी प्रकार के फल उन्हें उत्तम, मध्यम या कनिष्ठ प्राप्त हो जाते हैं।

जतु सतु संजमु नामु है विणु नावै निरमलु न होइ॥

हे भाई! जत, सत व संयम आदि साधन सब कुछ नाम

ही है, भावार्थ ब्रह्मचर्य धारण करना, सत्य का धारणी होना तथा अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखकर संयम धारण करना आदि जो भी साधन, असंख्य जीवों द्वारा किए जाते हैं, ये सब नाम के बिना कुछ भी नहीं है अर्थात ये सब भी नाम के द्वारा ही सफल हो पाते हैं क्योंकि हउमै और मोह के बिना यह मलिन मन, प्रभु जी के नाम के बिना निरमलु = उज्ज्वल हो ही नहीं सकता है।

पूरे भागि नामु मनि वसै सबदि मिलावा होइ॥

यदि भाग्य उत्तम हों तभी सतगुरू जी की कृपा प्राप्त हो पाती है और तभी नाम, मन में बसता है और तभी सबदि = गुरू जी के उपदेश के द्वारा प्रभु जी के साथ मिलावा = मिलाप होइ = होता है।

नानक सहजे ही रंगि वरतदा
हरि गुण पावै सोइ॥4॥17॥50॥

सतगुरू जी फुरमान करते हैं कि फिर वे गुरुमुखजन सहजे = सहज में ही प्रेम के रंग में रंग जाता है और वह हरि गुण = प्रभु जी के गुणों को प्राप्त कर लेता है भावार्थ वह प्रभु जी का स्वरूप ही हो जाता है।

सिरीरागु महला 3
काँइआ साधै ऊरध तपु करै
विचहु हऊमै न जाइ॥

हे भाई! जो अनेकों साधनों के द्वारा काइआ = शरीर को साधै = साधने के लिए शरीर को अनेकानेक कष्ट देते हैं तथा उरध = उल्टा लटक कर तपु = तपस्या करै = करते हैं लेकिन फिर भी उनके हृदय विचहु = में से हउमै = हंगता न = नहीं जाइ = जाती है।

अधिआतम करम जे करे नामु न कब ही पाइ॥

इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति अध्यात्मिक कर्म अथवा धार्मिक कर्म आदि करता रहे तो भी वह इन साधनों को करके कब = कभी भी नाम को प्राप्त नहीं कर सकता है।

गुर कै सबदि जीवतु मरै
हरि नामु वसै मनि आइ॥

यदि मनुष्य गुरू जी के सबदि = उपदेश के द्वारा जीव भाव से मरै = मर जाए भावार्थ देह हंगता को समाप्त कर ले तो फिर उसके मन में हरि नामु = प्रभु जी का नाम आइ = आकर बस जाता है।

सुणि मन मेरे; भजु सतगुर सरणा॥

हे मेरे मन! हमारी बात को सुनो और दौड़कर सतगुरू जी की शरण को ग्रहण कर लो तथा भजु = भजन सिमरन में जुट जाओ।

गुर परसादी छुटीऐ
बिखु भवजलु सबदि गुर तरणा॥1॥रहाऊ॥

हे भाई! सतगुरू जी की कृपा के द्वारा ही यमदूतों व कर्म बन्धनों के चंगुल से छूटा जा सकता है भावार्थ मुक्त हुआ जा सकता है और गुरु के शब्द द्वारा ही इस विष रूपी संसार सागर से पार हुआ जा सकता है, जिसमें कि बिखु = विषय विकारों का पानी भरा हुआ है।

त्रै गुण सभा धातु है दूजा भाऊ विकारु॥

जो त्रै गुण = तीनों गुणों (रजो, तमो व सतो) वाली सृष्टि है यह सब धातु = नष्ट हो जाने वाली माया ही है और जो दूजा भाउ = द्वैत भावना में लगे हुए हैं, वे विकार = बुरे कर्म ही करते हैं।

पंडितु पड़ै बंधन मोह बाधा
नह बूझै बिखिआ पिआरि॥

हे भाई! जो द्वैत भावना के कारण पण्डित, वेद-शास्त्र भी पड़ै = पढ़ता है लेकिन फिर भी मोह के बन्धनों में बँधा हुआ है तो इसका तात्पर्य है कि वह तत्व ज्ञान को समझता ही नहीं है, उसका प्यार तो विषय रूप माया के विषय-विकारों के साथ पड़ा हुआ है।

सतगुरि मिलिऐ त्रिकुटी छूटै
चऊथै पदि मुकति दुआरु॥2॥

हे बन्धु सतगुरू जी को मिलकर ही तीनों गुणों की त्रिकुटी छूट जाती है, अर्थात फिर ध्याता, ध्यान और ध्येय, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय; कर्ता, कर्म, क्रिया आदि का ज्ञान हो जाता है और माया के तीनों गुणों (रजो, तमो और सतो) को पार कर लिया जाता है तथा चउथै पदि = तुरियावस्था या ज्ञानावस्था को प्राप्त करके मुक्ति के द्वार को हासिल कर लिया जाता है।

गुर ते मारगु पाईऐ चूकै मोहु गुबारु॥

हे भाई! सतुगरू जी से ही सत्य का मार्ग पाईऐ = प्राप्त किया जाता है और जिस कारण से देह अभिमान रूपी अज्ञानता का गुबार = अन्धकार उठ जाता है।

सबदि मरै ता ऊधरै पाए मोख दुआरु॥

जो जीव गुरू के उपदेश के कारण जीवत भाव से मरै = मर जाते हैं, भावार्थ जिन्होंने अपने अहंभाव को मार लिया है, उनका इस संसार पर उद्धार हो गया है और उन्होंने मोखु दुआरु = मुक्ति के द्वार अर्थात ज्ञान को प्राप्त कर लिया है।

गुर परसादी मिलि रहै सचु नामु करतारु॥3॥

जो सचु = सच्चे नाम वाला करतारु = परमात्मा है। गुरू जी की परसादी = कृपा के द्वारा ही जीव उस प्रभु में मिला रहै = रहता है।

(शेष पृष्ठ 55 पर)

स्वामी राम जी के प्रेरणात्मक विचार
(Inspired Thoughts of Swami Ram)

डा. स्वामी राम जी

अनुवादक - शमशेर सिंह 'कोमल', एम. ए., एम. फिल.

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक सितम्बर, पृष्ठ - 54)

जब दो व्यक्ति एक किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जुड़ते हैं तो वह लक्ष्य खुशी होता है और वह एक बहुत बड़ी बात होती है। यदि वे कोशिश करें तो वे उपलक्ष्य को हासिल करने में सफल भी हो सकते हैं। उन्हें किसी सलाहकार की जरूरत नहीं होती है। उन्हें अपनी समस्याएँ स्वयं बैठकर और पारस्परिक वातचीत के द्वारा सुलझा लेनी चाहिए। उन्हें इन समस्याओं का निराकरण प्यार सहित, धैर्यपूर्वक, विनम्रतापूर्वक व कृपावान होकर कर लेना चाहिए। बस आवश्यकता है, अपने आपको नियन्त्रण में रखने की और एक दूसरे को समझने की। जब वे परस्पर मिलते हैं, तो उतावले होने की जरूरत नहीं है बल्कि स्थिति को समझने व सहजता की जरूरत है। इस बात को हमें भली भांति समझ लेना चाहिए कि मनुष्य (पुरुष व स्त्रियाँ) कोई 'वस्तु' नहीं है बल्कि वे जीते-जागते लोग हैं और वे एक दूसरे के लिए प्यार से भरे हुए हैं। यदि उनके अन्दर प्यार होगा तो वे प्यार ही देंगे और प्यार ही देना चाहिए। कभी भी एक दूसरे को 'वस्तु' नहीं समझना चाहिए। यदि कोई वस्तु ठीक न हो अथवा ठीक ढंग से कार्य न करे तो हम उसे बदल लेते हैं लेकिन मनुष्यों के साथ ऐसा नहीं किया जा सकता है।

तीन स्तरों पर प्यार को प्रकट करो -

प्यार को हम बहुत तरीकों से प्रकट कर सकते हैं। जब कोई बीमार हो तो हम उसकी सेवा-सम्भाल कर सकते हैं, उसके साथ अधिक समय व्यतीत कर सकते हैं, हार्दिक रूप से अच्छा बोलकर और उसकी सेवा-सम्भाल करके हम अपने प्यार का प्रकटीकरण कर सकते हैं। देखने में आया है कि बहुत सारे लोग अपने प्रियजनों के साथ इन स्तरों पर बातचीत ही नहीं करते हैं। बहुत बार एक पति बाहरी तौर पर अपनी पत्नी के साथ अच्छा होता है, लेकिन वह मानसिक स्तर पर ठीक नहीं होता है, वह अपनी पत्नी की इज्जत ही नहीं करता है, उसे प्यार ही नहीं करता है। ठीक है वह पत्नी को सब कुछ देता है लेकिन वह एक अच्छा पति नहीं है। हमें जरूरत है कि हम तीनों स्तरों पर अच्छी बातचीत करें और अपने प्यार का प्रकटीकरण करें।

जब घर में एक बच्चे का जन्म होता है तो देखा गया है कि पति-पत्नी के बीच बहुत सारी समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। पति कहने लग जाता है कि तुम तो बच्चे को अधिक समय देती हो, उसे अधिक प्यार करती हो और मुझे तो प्यार ही नहीं करती हो। पत्नी कहती है कि बच्चा तो हम दोनों का है और उसे सम्भालने की जरूरत है। उस स्थिति में पत्नी, पति का अधिक ध्यान नहीं रख सकती है। पति यह समझता है कि पत्नी को अब उसकी जरूरत ही नहीं रह गई है और उसने तो मुझे अब त्याग ही दिया है। पति को इस प्रकार से महसूस नहीं करना चाहिए लेकिन वह स्वार्थी है। इसलिए वह इस प्रकार से महसूस करता है। इसी वजह से बच्चे को बुरे-बुरे सपने आते हैं, उसका शरीर काँपता है और वह खुश नहीं रह पाता है। इसका कारण यह है कि माता-पिता की सोच व उनके भाव उसके ऊपर प्रभाव डालते हैं। यह एक सच्चाई है, यदि वे चुपचाप भी लड़ाई करते हैं तो भी बच्चे के ऊपर प्रभाव पड़ता है। बच्चा करवटें बदलता रहेगा वे-आरामी महसूस करेगा और अच्छी तरह से सो नहीं सकेगा और बहुत बार बच्चे का हाजमा भी खराब हो सकता है। यह सब इस बात का संकेत है कि बच्चा यह कह रहा है कि उसके माता-पिता ठीक नहीं कर रहे हैं। वे प्यार के कानून के विपरीत जा रहे हैं। वे आपस में तो एक दूसरे को दुख पहुँचा ही रहे हैं, साथ ही में वे उस भोले मासूम को भी दुख पहुँचाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ रहे हैं।

पारिवारिक जीवन कोई सरल जिम्मेवारी नहीं है। यह कोई सरल वचन-बन्धन नहीं है, यह कोई परमात्मा का सरल आदेश नहीं है। यह तुम्हें बहुत अधिक खुशी दे सकता है। यह तुम्हारे लिए एक बहुत बड़ा साधन है, जिसके द्वारा तुम अपने आप को, मन के द्वारा बोलकर व प्यार प्रकट कर बहुत खुशी दे सकते हो। यह कहा जा सकता है कि यदि

तुम जीवन में कामयाब होना चाहते हो, आनन्द प्राप्त करना चाहते हो, तो तुम्हें अपने मन का ठीक प्रयोग करना आना चाहिए। यदि तुम्हारा मन नकारात्मकता की तरफ जा रहा है तो फिर तुम्हारा मिलाप, तुम्हारे साथी के साथ हो ही नहीं सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि तुम मानसिक तौर पर प्रत्येक समय सकारात्मक रहो यानि कि तुम कहो, 'मैं करूँगी', 'मैं कर सकती हूँ'। यह सकारात्मक होने का उत्तम साधन है और यह भाव तुम्हें अपने मन के पास निरन्तर भेजते रहना चाहिए। यदि तुम सकारात्मक होओगे तो फिर तुम्हारी कथनी, करनी व सोच-विचार सारा ही सकारात्मक होगा लेकिन यदि हमारा मन ही सकारात्मक नहीं होगा तो फिर हमारी करनी कभी भी सकारात्मक हो ही नहीं सकती है।

एक दूसरे को नकारो नहीं। एक दूसरे के अस्तित्व को समाप्त करने की कोशिश मत करो और न ही एक दूसरे पर निर्भर होओ क्योंकि यह प्यार नहीं है। अपने साथी को अपने पर निर्भर मत बनाओ। पति, पत्नी को स्वतन्त्र रहना चाहिए लेकिन इकट्ठे रहना चाहिए तथा मानसिक तौर पर सकारात्मक रहना चाहिए। पति, पत्नी को नकारात्मक सोच नहीं रखनी चाहिए और न ही उन्हें अकर्मक ही होना चाहिए क्योंकि अकर्मक होने का तात्पर्य है कि पीछे हो जाना। अधिक भरोसा करना भी उचित नहीं है। आवश्यकता से अधिक भरोसा करने से भी पारिवारिक जीवन में सफलता नहीं मिल सकती है। भरोसेमन्द तो होना चाहिए लेकिन भरोसा अपने आप पर होना चाहिए क्योंकि आत्म निर्भरता भी तभी आती है जबकि तुम अपने आपको अच्छी तरह से समझ लेते हो, अपनी योग्यता को अच्छी तरह से समझ लेते हो।

असफलता के कारण हमें नकारात्मक नहीं बन जाना चाहिए। दरअस्ल हमारा सारा जीवन ही खुशी की तलाश करते हुए व्यतीत हो जाता है। जीवन में यह जरूरी नहीं है कि हमें प्रत्येक क्षेत्र में सफलता ही मिले। समुद्र में गोता लगाने वालों को प्रत्येक बार मोती ही तो नहीं मिल जाते हैं। यह भी हो सकता है कि गोताखोर बीस बार समुद्र में गोता लगाए और उसे एक बार भी मोती न मिल पाए। कई बार तो ऐसा भी होता है कि जिस मोती की वे तलाश करना चाहते हैं वह उन्हें सालों तक लगातार गोता लगाते रहने से भी प्राप्त नहीं हो पाता है। नि:शंक रूप से वह मोती समुद्र में विद्यमान होता है लेकिन वह हाथ में नहीं आ पाता है। गोताखोर तो अपनी ड्यूटी करता रहता है यानि कि वह गोते लगा-लगाकर तलाश करता रहता है लेकिन वह वांछित मोती प्राप्त नहीं हो पाता है। अत: हम सबको अपनी ड्यूटी करते रहना चाहिए, कोशिश करते रहना चाहिए और बिल्कुल सच्चे मन से हमें कोशिश करते रहना चाहिए।

पारस्परिक बातचीत को हमें सीखने की जरूरत है। यदि हम किसी को गोली मार दें तो उस गोली को बाहर निकाला जा सकता है, जख्म ठीक हो सकता है लेकिन कड़ुए वचनों को कभी भी वापिस नहीं लौटाया जा सकता है। कड़ुवा वचन तो गोली से भी कहीं अधिक नुक्सान कर देता है। जैसे कि एक पति अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता है, लेकिन एक दिन वह उस पर क्रोधित होकर उसे बहुत अधिक बुरा बोल देता है, जिसे कि वह कभी भी भूल नहीं पाती है। उसने ऐसा क्यों किया? उसने ऐसा इसलिए किया क्योंकि वह उसके मन में था। अत: तुम्हें यह ध्यानपूर्वक देखना चाहिए कि तुम्हारे मन में क्या एकत्र हुआ है। देखो और सोचो कि तुम आपस में बोलते क्यों नहीं हो? सहजता रखो और यह सोचो कि दूसरे तुमसे किस चीज की उम्मीद रखते हैं। तुम यह कहो कि मैं लड़ना नहीं चाहती हूँ, आप जो कुछ भी कहोगे मैं उसे समझने की कोशिश करूँगी और मैं जो कुछ भी कहूँगी तुम भी उसे समझने की कोशिश करो। अपने साथी को यह मत कहो कि तुम यह कर रहे हो, तुम वह कर रहे हो, तुम यह क्यों नहीं कर रहे हो, तुम वह क्यों नहीं कर रहे हो? अपने साथी को आत्म विश्लेषण करने दो, उसे यह देखने दो कि उसके अन्दर कितनी सामर्थ्य है।

रात को सोने से पहले सारा कुछ या सारी बातें नहीं करनी चाहिए और न ही खाना खाने से पहले कोई नकारात्मक बात करनी चाहिए बल्कि खाना खाने से पहले सकारात्मक बातें ही करनी चाहिए। भले ही तुम सारा दिन कितने ही क्रोधावेश में और निराशता के भाव में रहे हो लेकिन फिर भी खाना खाने से पहले और रात को सोने से पहले अच्छी बातचीत ही करो। यदि दिन के समय तो तुम ठीक रहते हो लेकिन खाना खाने से पहले और रात को सोने से पहले तुम क्रोधावेश में और निराशा के भाव में जाते हो तो इसके द्वारा तुम्हारा अपने साथी के साथ पूरी-पूरी समझ और पूरा-पूरा तालमेल होना अत्यावश्यक है। एक दूसरे को समय देना बहुत जरूरी है। सप्ताह में एक पूरा दिन अपने साथी को दो। तुम कहो कि आओ! हम आज सारी बातें करें, जिन्हें कि हम सारा सप्ताह भी नहीं कर सके हैं। इसका यह तात्पर्य कदाचित नहीं है कि हमने एक दूसरे की सारी बातें माननी ही हैं अथवा एक दूसरे की प्रत्येक बात से सहमत होना ही है। बस, एक दूसरे को सुनना है, तुम भी सुनो और मैं भी सुनूँगा। औरत घर की एक कुर्सी की तरह से नहीं है कि तुम जब चाहो उसे बदल लो और न ही आदमी एक अतिथि की तरह से है। यदि पति व पत्नी एक दूसरे की इज्जत करें तो वे बहुत अच्छा जीवन बिता सकते हैं और परस्पर प्रसन्न रह सकते

हैं। योग हमें यह बताता है कि अपनी ड्यूटी को निर्लिप्त होकर करने से और व्यवस्थित ढंग से करने से अपने लक्ष्य की प्राप्ति इसी जीवन में की जा सकती है। यह बिल्कुल सम्भव है और तुम इसे कर सकते हो।

अपने साथी के साथ बातचीत करो और बातचीत तीन स्तरों पर करो। ये तीन स्तर हैं - मन का स्तर, बोलकर और अपने कार्य के द्वारा। यदि तुम खुश रहना चाहते हो तो समझ लो कि जिन लोगों के साथ तुम रहते हो उन्हें खुश रखो। तुम जो कुछ भी करते हो उसके ऊपर पूरा-पूरा ध्यान दो। इस प्रकार करके तुम अपने आपको सिखा रहे हो। अपने लक्ष्य को कभी भी मत भूलो। नकारात्मक होकर और अकर्मक होकर तुम कहीं भी पहुँच नहीं सकते हो और कुछ भी नहीं कर सकते हो। एक बात सीख लो कि जीवन, विस्तार का नाम है न कि संकुचन का। अहंकार के अन्दर मत फँसो, विस्तृत होना सीखो, इस प्रकार करके तुम जितना बाँटोगे उतना ही तुम आगे बढ़ोगे। प्यार के द्वारा जीवन में आगे बढ़ो क्योंकि प्यार ही जीवन का आधार है।

(पृष्ठ 52 का शेष)

इहु मनूआ अति सबल है छडे न कितै ऊपाइ॥

यह मन जो कि अत्यन्त सबल = बलशाली है भावार्थ आसुरी सम्पदा के कारण जो मन बलशाली है, यह कितै = किसी भी प्रकार के उपाइ = यत्न करने के बावजूद भी जीव को अपने पीछे लगाने से छडै = छोड़ता नहीं है।

दूजै भाइ दुखु लाइदा बहुती देइ सजाइ॥

यह मन जीव को दूजै भाइ = द्वैत भाव अथवा दुविधा में डालकर दुख लाइदा = देता रहता है, जिस कारण से अन्तिम समय में यमदूत इस जीव को बहुती = बहुत अधिक सजाइ = सजा देहि = देते हैं।

नानक नामि लगे से ऊबरे
हऊमै सबदि गवाइ॥4॥18॥51॥

सतगुरू जी फुरमान करते हैं कि जो वाहिगुरू का नाम सिमरन करने में लगे हुए हैं, से उबरे = वे बच जाते हैं क्योंकि उन्होंने सबदि = गुर उपदेश की कमाई द्वारा अपने अन्दर से हउमै को गवाइ = गंवा लिया है।

रतवाड़ा साहिब में महापुरुषों के प्रवचनों का कार्यक्रम

प्रत्येक रविवार रतवाड़ा साहिब - 12.00 बजे से 3.30 बजे तक

पूर्णमाशी - 13 अक्टूबर, दिन रविवार। (शाम 7.00 बजे से 10.00 बजे तक)

संक्रान्ति - कार्तिक, 16 अक्टूबर, दिन वीरवार। (प्रातः 5.30 बजे से 8.00 बजे तक)

अमृत संचार - महीने के प्रथम रविवार।

INTERNET MEDIA AND LIVE TELECAST

Website : www.ratwarasahib.in
Website : www.ratwarasahib.org
Instagram : RATWARA SAHIB (https://instagram.com/ratwara.sahib/)
You Tube : https://www.youtube.com/user/babalakhbirsingh
Facebook : https://www.facebook.com/ratwarasahib1
Twitter : https://mobile.twitter.com/ratwarasahib13
Live Audio Link 1 - https://www.awdio.com/Ratwara Sahib
Live Audio Link 2 - https://mixlr.com/ratwara-sahib
E-mail :- sratwarasahib.in@gmail.com

Contact - 9569455861, 9417912900, 9814612900

आवश्यक निवेदन

आत्म मार्ग मैगज़ीन की मैंबरशिप/रिन्यूिवल या दसवंद पंजाब एंड सिंध बैंक की किसी भी शाखा द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में भेजी जा सकती है।

भारत (INDIA)

आत्म मार्ग मैगज़ीन की मैंबरशिप/रिन्यूिवल भेजने के लिए -

VGRMCT / Atam Marg Magazine
S/B A/C No. 12861000000003 RTGS/IFSC Code - PSIB0021286
Branch Code - C1286

दसवंद भेजने के लिए -

Vishav Gurmat Roohani Mission Charitable Trust
SB A/C No. 12861100000005 RTGS/IFSC Code - PSIB0021286
Branch Code - C1286

विदेश (ABROAD)

Vishav Gurmat Roohani Mission Charitable Trust
Punjab National Bank SB A/C No. 0779000100179603
RTGS/IFSC Code - PUNB0077900 Branch Code - 077900

यदि चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट द्वारा राशि भेजनी हो तो ऊपरलिखित खातों अनुसार Gurdwara Ishar Parkash Ratwara Sahib, P.O. Mullanpur Garibdas. Distt S.A.S. Nagar (Mohali) - 140901 पर भेजने की कृपा करें। यदि Online राशि भेजनी हो तो राशि की जानकारी देते समय अपना नाम व पूरा पता मोबाइल नं. +91-98889-10777 पर SMS भेजें जी।

सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि यदि आपने अभी तक आत्म मार्ग मासिक पत्रिका की सदस्यता ग्रहण नहीं की है तो आप कृप्या अधोलिखित प्रारूप पत्र को भरकर सदस्यता ग्रहण करने की कृपा करें। यदि आप पहले से ही सदस्यता ग्रहण कर चुके हैं, तो पुनर्नवीनीकरण हेतु इस प्रारूप पत्र के साथ आवश्यक चैक/ड्राफ्ट "VGRMCT/ATAM MARG MAGAZINE" के नाम पर प्रेषित करने की कृपा करें।

Subscription form ✓ ☐ नई सदस्यता ☐ पुनर्नवीनीकरण ☐ आजीवन सदस्यता

within India

Subscription Period	By Ordinary Post/Cheque	By Registered Post/Cheque
1 Year	Rs. 300/320	
3 Year	Rs. 750/770	
5 Year	Rs. 1200/1220	
Life	Rs 3000/3020	

	Annual	Life
U.S.A.	60 US$	600 US$
U.K.	40 £	400 $
Europ	50 Euro	500 Euro
Australia	80 Aus $	800 Aus $

जनवरी ☐ फरवरी ☐ मार्च ☐ अप्रैल ☐ मई ☐ जून ☐ जुलाई ☐ अगस्त ☐ सितम्बर ☐ अक्तूबर ☐ नवम्बर ☐ दिसम्बर ☐

नाम/Name पता/Address...

....

..............Pin Code............. Phone .... E-mail :..........................

सन्त वरियाम सिंह चैरिटेबल अस्पताल, रतवाड़ा साहिब

समय - सुबह 9.30 बजे से 2.00 बजे तक (रविवार से शुक्रवार)

डाक्टरों का समय - सुबह 10.00 बजे से 12.00 बजे तक

दूरभाष नं. 98786-95178, 92176-93845

डा. का नाम	विशेषज्ञ	दिन
1. डा. जसबीर कौर	जनरल मैडिसन	सोमवार
2. डा. गुरिंदर कौर कंग	एम. डी. (गाइनी)	सोमवार
3. डा. कुलदीप सिंह कंग	एम. डी. (आँखों के विशेषज्ञ)	सोमवार
4. डा. हरबंस सिंह	अस्थि रोग तथा जनरल मैडिसन	मंगलवार
5. डा. तेजिंदर सिंह	जनरल मैडिसन	मंगलवार
6. श्री माइकल जी	एक्स-रे विशेषज्ञ	मंगलवार तथा वीरवार
7. डा. जे. एस. गुजराल	जनरल मैडिसन/शिशु रोग विशेषज्ञ	मंगलवार तथा वीरवार
8. डा. आर. एस. संधू	अस्थि रोग तथा जनरल मैडिसन	वीरवार
9. डा. संतोष अनेजा	जनरल मैडिसन	वीरवार
10. डा. एस. के. बांसल	जनरल मैडिसन	शुक्रवार
11. डा. बरिन्दर सिंह	जनरल मैडिसन तथा त्वचा रोग विशेषज्ञ, एअरो स्पेस मैडिसन	शुक्रवार
12. डा. जिंदल	जनरल मैडिसन	रविवार
13. डा. गुरप्रीत कौर गिल	होम्योपैथिक	बुद्धवार
14. डा. कुलदीप कौर	दाँतों के विशेषज्ञ	मंगलवार

-: लैबोरेटरी टैस्ट तथा अन्य सुविधाएँ :-

1. खून टैस्ट, 2. सारे खून सैल काउंट टैस्ट 3. ब्लड शुगर टैस्ट, 4, किडनी टैस्ट, 5. लीवर टैस्ट, 6. लिपिड परोफाइल टैस्ट, 7. थायराइड टैस्ट, 8. हिमोग्लोबिन टैस्ट, 9. पेशाब टैस्ट, 10. स्टूल टैस्ट, 11. ई.सी.जी., 12. एक्स-रे (क्ष-किरण)

सारे लैबोरेटरी टैस्ट आधे शुल्क पर किये जाते हैं तथा मरीज को दवाई मुफ्त दी जाती है।

प्रत्येक रविवार को अस्पताल खुला रहेगा। समय 11.00 से 1.00 बजे तक। प्रत्येक शनिवार को अस्पताल बन्द रहेगा।

विश्व गुरमत रूहानी मिशन चैरिटेबल ट्रस्ट

के मुख्य संस्थापक प्यारे महापुरुष सन्त बाबा वरियाम सिंह जी द्वारा लिखित व प्रकाशित पुस्तकें

यह पुस्तकें श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल रूप में स्पष्ट करके जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। इनकी विषय वस्तु के रूप में नाम, सेवा व स्मरण की विधियों को प्रस्तुत करते हुए जन साधारण की भाषा का अत्यन्त सरल, मार्मिक व हृदयस्पर्शी प्रयोग किया गया है। यह दुर्लभ पुस्तकें, प्रत्येक जिज्ञासु व साधक के लिए एक अमूल्य निधि के रूप में हैं। अध्यात्मिक सुख व शान्ति प्राप्त करने हेतु आप इन्हें प्राप्त करके स्वयं पढ़ें तथा अन्य श्रद्धालुजनों को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। यह सभी पुस्तकें गुरुद्वारा ईशर प्रकाश रतवाड़ा साहब में आपकी सेवार्थ उपलब्ध हैं -

हिन्दी	
1. सुरति शबद मार्ग	70/-
2. किव कुड़ै तुटै पालि	35/-
3. बात अगंम की - सात भागों में	400/-
4. किव सचिआरा होइए - भाग पहला	35/-
5. किव सचिआरा होइए - भाग दूसरा	65/-
6. किव सचिआरा होइए - भाग तीसरा	100/-
7. होवै आनन्द घणा	30/-
8. बाबाणियाँ कहानियाँ	50/-
9. सुरतिआं उपजै चाउ	40/-
10. सर्व प्रिय गुरू गोबिंद सिंह जी	10/-
11. भक्त प्रहलाद	10/-
12. अमृत फुहार	10/-
13. अगम अगोचर का मार्ग	70/-
14. जपुजी साहिब सटीक	15/-
15. अमर ज्योतियाँ	15/-
16. अमर गाथा	100/-
17. वैशाखी	10/-
18. साजन चले प्यारिआ	10/-
19. अविनाशी ज्योति - भाग 1	90/-
20. रूहानी गुलदस्ता	70/-
21. चउथै पहरि सबाह कै	60/-

English Version	Price
1. Baisakhi	Rs. 5/-
2. How Rend The Veil of Untruth	Rs. 70/-
C. Discourses on the Beyond -1	Rs 50/-
4. Discourses on the Beyond -2	Rs. 50/-
5. Discourses on the Beyond -3	Rs. 50/-
6. Discourses on the Beyond -4	Rs. 60/-
7. Discourses on the Beyond -5	Rs. 60/-
8. The way to the imperceptible	Rs. 80/-
9. The Lights Immortal	Rs. 20/-
10. Transcendental Bliss	Rs. 70/-
11. How to Know Thy Real Self-(Vol-1)	Rs. 80/-
12. How to Know Thy Real Self-(Vol-2)	Rs. 80/-
13. How to Know Thy Real Self-(Vol-3)	Rs. 110/-
14. The Dawn of Khalsa Ideals	Rs. 10/-
15. A Glimpse of His Holiness - Baba ji	Rs. 5/-
16. Divine Word Contemplation Path	Rs. 150/-
17. The Story of Immortality	Rs. 260/-
18. Why not Contemplate the Lord	Rs. 200/-

ऊपरलिखित पुस्तकें आप जी मनीआर्डर, चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट द्वारा रतवाड़ा साहिब से मंगवा सकते हैं या ट्रस्ट के अकाउंट में राशि जमां करवा कर मोबाइल नं. 9417214391, 9592009106, 9417214379 पर सूचित कर सकते हैं। **Bank Name : Pb & Sind Bank, A/c Name. VGRMCT/ ATAM MARG MAGAZINE, S/B A/C No. 12861000000003, RTGS/IFSC Code - PSIB0021286, Branch Code - C1286**

The Way to Establish Permanent Peace

(Late) Sant Teja Singh Ji

Ik Onkar Satgur Prasad
Ik Onkar Satnam Karta Purkh
Nirbhao Nirvair Akal Moorat
Ajooni Saibhang Gurprasad
Jap
Ad Sach, Jugad Sach
Hai Bhee Sach
Nanak Hosi Bhee Sach.

ੴ ਸਤਿਨਾਮੁ ਕਰਤਾ ਪੁਰਖੁ ਨਿਰਭਉ ਨਿਰਵੈਰੁ
ਅਕਾਲ ਮੂਰਤਿ ਅਜੂਨੀ ਸੈਭੰ ਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ॥
ਅੰਗ - 1

There is but One all embracing and all powerful Divinity, who manifests Himself first in the shape of the Word, and then through the whole created universe.

He is the One-in-All and the All-in-One. He is the Eternal Reality and His home is also Eternal. He is the Creator and has the power of Independent self creation. (He can create everything by Himself.) He is above all fear, and above all enmity. He is a deathless Being, is Immortal and is free from birth and rebirth. He is self existent and the fountain-head of all the motive force in the universe. He can be realized through the Satguru (One who has realized the Divine within and has become God conscious).

Sayeth Nanak, O Searcher after Truth meditate on the Name, Waheguru, God the boundless Divine reality, the remover of the veil of ignorance from the human mind, who was true and self existent before creation, was true through all the ages (Yugas), is true now, and shall be true and self existent for all times to come.

Religion is a subjective research. It is as scientific, nay more exact in its realization as the objective research called science. The whole material world is the manifestation of the Eternal Divine. In other words the whole physical world is the physical frame of God. The scientific research deals with this frame. For long science groped in darkness and classified matter and spirit as two distinct things but now its ultimate research has found in the words of J.S.Haldance:

The material world which has been taken for a world of blind mechanism, is in reality a spiritual world, seen very partially and imperfectly.

The only real world is the spiritual world. The truth is that no matter, no force, not any physical thing, but mind and personality is the central fact of the universe. This is now supported by all advanced physicists.

Unfortunately the real looking within, and the realization of the Divine in the human heart has been neglected by most of the religious cults. Rituals and forms have taken the first place, and the essentials of the Divine research, meditation of Divine Name, daily Hari Kirtan (singing hymns in the Divine praise), the practice of the religious truths in our daily life, have been relegated to a secondary one.

It is the duty of all the religionists to come on a common platform and give to the

world the message so simply and forcefully given by Guru Arjan (the fifth Guru Nanak) in His Sukhmani Sahib (The Jewel of Peace and Atonement).

The purest and the highest Dharma (religion) is Meditation on the Divine Name and the performance of righteous and unselfish actions in our daily life.

The way to this World Federation of Religions has been paved by Guru Arjan, by bringing on the same spiritual platform all those who meditated on the Divine Name, without any distinction of caste, creed, race or colour, on the land of Hindustan. Not only he brings them on the same stage as equal copartners in the spiritual realm, but he also demonstrates scientifically for the first time in the history of religion, that the sphere of God consciousness, or the realization of the Divine within is a real permanent and fixed stage, which a searcher after truth can reach if he sincerely carried on the research and goes on the path of devotion and prayer without falling into the pitfalls which come in the way of this long and arduous journey.

In the first stage of one's devotional career worldly fame and success naturally come to him. If he is puffed up by this, he falls into the pit of pride. If, however, in deep humility and meekness he goes on and thinks that all fame and success is God's, then occult powers begin developing in him. Ridhi and Sidhi knock at his door. People are attracted to him with all kinds of offerings in money and kind.

If he begins using them for his personal comforts only, then further progress is stopped. If, however, he spends them for the unselfish service of mankind in any shape or form then he reaches the stage of Sidhi, whatever he speaks out comes to pass.

This stage is the most slippery one in the path of Divine realization. People flock to him for the attainment of worldly ends and ask for his blessings. If he begins doing so, he stops all further progress and fritters away the power he has so far attained.

If, however, he keeps his power under control, then he reaches the stage of knowledge. Past and future open to him and he gets a vision of the immensity of this universe. Then he humbly falls down on his knees and feels in the words of Issac Newton that "he is only picking pebbles on the shores of the boundless ocean of the all pervading Divine Mind." In this frame of mind God's grace descends upon him and he becomes at one with the One-in-All and the All-in-One.

When collecting the sacred hymns of the first four Gurus (Guru Nanak, Guru Angad, Guru Amardass and Guru Ramdass), in Guru Granth Sahib, the holy scripture of the Sikhs, Guru Arjan has side by side with his own hymns and those of the first four Gurus, placed the hymns of all Bhagats of the 15th Century who followed the path of devotion and prayer and realized the Divine within.

These Bhagats belonged to all classes and religions, and in the beginning followed the rites and rituals of their own sect, but as they went on, all voice proclaimed same truth, the existence and the realization of an all pervading and all embracing Divine Reality, the One-in-all and All-in-one. Thus establishing once for all that sphere of God consciousness is a live realization, and he who honestly searches after it in meek

humility, and keeps the company of God conscious persons reaches it.

Here I will take seven of these Bhagats and give their final experiences in their own words :

1. Ramananda was a Gourd Brahman and a Vaishnava. He was an extreme devotee of outward cleanliness and ritualism. He started as a worshipper of Krishna Moorti. Then took to meditation of Ram (the all pervading). Being an honest searcher after truth, he went on his way of meditation and prayer and ultimately reached the stages which is given in his own words:

"Where shall I go now I have realized the source of love and bliss in my own heart. My mind now does not wander, it has found its heaven of peace and bliss.

2. Bhagat Kabir was a weaver by caste. He was a disciple of Ramanand. He meditated on the all pervading Ram and was known as the greatest Bhagat of his time, a Brahm Giani who felt the whole universe as a manifestation of the Divine and saw God in everything which he in his own words puts thus :

"The first manifestation of Allah was light, and then nature evolved all mankind. The whole created universe sprang up from One Divine Light, then whom shall we call good and whom bad (high or low), O man do not lose yourself in false doubts. He is the One-in-all and the All-in-one and pervades the whole creation.

ਅਵਲਿ ਅਲਹ ਨੂਰੁ ਉਪਾਇਆ ਕੁਦਰਤਿ ਕੇ ਸਭ ਬੰਦੇ ॥
ਏਕ ਨੂਰ ਤੇ ਸਭੁ ਉਪਜਿਆ ਕਉਨ ਭਲੇ ਕੋ ਮੰਦੇ ॥1॥ ਅੰਗ - 1349

3. Namdev, a Maharashtrian Bhagat (a devotee of Gobind), was a washerman, dyer and calico printer. He started his devotional career as an idol worshipper, but being a true and non-sophisticated searcher after the Eternal Divine reached the stage of self realization. He says : "Ram speaks through all the created frames (bodies). None else but Ram speaks. From an ant to an elephant all variegated forms have been created out of one clay (composite of five elements).

ਸਭੈ ਘਟ ਰਾਮੁ ਬੋਲੈ ਰਾਮਾ ਬੋਲੈ ॥
ਰਾਮ ਬਿਨਾ ਕੋ ਬੋਲੈ ਰੇ ॥1॥ਰਹਾਉ ॥
ਅੰਗ - 988

4. Sheikh Farid was a Mohammedan searcher after Truth. He followed the rites and rituals of his religion and was very strict in saying his Namaz (Prayer) five times a day. He meditated every morning on Allah. Being a true and honest seeker he reached the conclusion that God existed in the hearts of all men and if one really wishes to realize Him, he should not hurt the feelings of any one.

In his own words Sheikh Farid says,

"Do not speak rudely to any one, as the same Divine Master dwells in the hearts of all. Do not break the heart of any one, as every heart is a priceless jewel in the Divine realm.

ਇਕੁ ਫਿਕਾ ਨ ਗਾਲਾਇ ਸਭਨਾ ਮੈ ਸਚਾ ਧਣੀ ॥
ਹਿਆਉ ਨ ਕੈਹੀ ਠਾਹਿ ਮਾਣਕ ਸਭ ਅਮੋਲਵੇ ॥126॥ ਅੰਗ - 1384

5. Bhikhan was also a Mohammedan Saint. He meditated on the Divine Name and expressed his final realization in the following words." The priceless jewel of the Divine Name has bestowed upon me as a reward of my good Karmas. It has found a permanent place in my heart. Inspite of all my efforts to hid, its glory shines forth on

my forehead and radiates through the whole of my frame.

ਐਸਾ ਨਾਮੁ ਰਤਨੁ ਨਿਰਮੋਲਕੁ ਪੁੰਨਿ ਪਦਾਰਥੁ ਪਾਇਆ ॥
ਅਨਿਕ ਜਤਨ ਕਰਿ ਹਿਰਦੈ ਰਾਖਿਆ ਰਤਨੁ ਨ ਛਪੈ ਛਪਾਇਆ ॥ ਅੰਗ - 659

6. Ravidass, a Cobbler by profession, devotes himself to meditation on Ram, the all pervading, and attains the stage of enlightenment. High caste Brahmins fall down at his feet to receive his blessings and get the gift of the Divine Name. The stage of mind which he reached is given here in his own words :

"I have reached that region of spiritual life which is free from all anxiety. There is no pain and sorrow. There is no attachment and no taxes to pay. I have risen above all fear, error and there is no coming down from this stage.

Now I have found my true home and enjoy eternal bliss. The crown of everlasting spiritual kingship has been bestowed on me. All thoughts of mine and thine, second or third have vanished. I see One and One alone. It is an ever glorious eternal realm and in it dwell those whose hearts are filled with the glory of God; having reached atonement with the Divine Law their actions become spontaneous and natural, free from all restraint of attachment. Sayeth Ravidass Chamar all shackles of doubts and fears have been removed. I have become a free man and he who has reached this—stage is my true friend and spiritual companion.

ਬੇਗਮਪੁਰਾ ਸਹਰ ਕੋ ਨਾਉ ॥
ਦੂਖੁ ਅੰਦੋਹੁ ਨਹੀ ਤਿਹਿ ਠਾਉ ॥
ਨ ਤਸਵੀਸ ਖਿਰਾਜੁ ਨ ਮਾਲੁ ॥
ਖਉਫ ਨ ਖਤਾ ਨ ਤਰਸੁ ਜਵਾਲੁ ॥ ਅੰਗ - 345

7. Pipa was Raja of Gungraograth. He was a disciple of Ramanand and meditated on Ram, the all pervading. He gives his experience along the path of self-realization in the following words "One need not go to a temple and -worship a stone image, one need not burn incense, light ghee in earthen pots, take flowers and green leaves for Puja (for worship of the stone deity). Search within and you shall realize the Divine who dwells in all human frames. The whole universe is manifestation of the eternal Divine. All forms spring from the Divine ocean and then like waves in the sea merge into it.

The Eternal Divine who permeates the universe, is in every human heart. He who looks within by meditation and prayer realizes Him. In deep humility says Pipa, the Eternal Divine is an everlasting reality, and the guidance of a true Teacher, who is God conscious makes one realize Him, both within and without. The whole outlook is changed and the universe manifests itself clothed in one Divine Glory. The mind, the tongue and the eyes see Him and Him alone.

ਕਾਯਉ ਦੇਵਾ ਕਾਇਅਉ ਕੇਵਲ ਕਾਇਅਉ ਜੰਗਮ ਜਾਤੀ ॥
ਕਾਇਅਉ ਧੂਪ ਦੀਪ ਨਦੀਬੇਦਾ ਕਾਇਆਉ ਪੂਜਉ ਪਾਤੀ ॥1 ॥
ਜੋ ਬ੍ਰਹਮੰਡੇ ਸੋਈ ਪਿੰਡੇ ਜੋ ਖੋਜੈ ਸੋ ਪਾਵੈ ॥
ਪੀਪਾ ਪ੍ਰਣਵੈ ਪਰਮ ਤਤੁ ਹੈ ਸਤਿਗੁਰੁ ਹੋਇ ਲਖਾਵੈ ॥2 ॥ ਅੰਗ - 695

The above instances of seven searchers after God, who belong to various castes, creeds and ranks of society, who began their search after truth in their own way, but ultimately took to meditation on the Divine Name, Ram, Gobind or Allah, clearly shows to us that every sincere and honest searcher after truth is naturally guided in his path of

(Contd. on P. 73)

Spiritual Oasis in the Desert of Maya

Khoji

The profound Mercy and Grace of God is manifested in the existence of 'life-giving' natural water springs and the associated greenery and throbbing life amidst the otherwise burning sand-dunes of deserts. These beautiful spots, called OASIS, provide to the caravans of travellers rest, relief, and solace during their dreary and, gruesome journeys through the vast expanses of barren, desolate and burning DESERT.

These deserts extend to thousands of miles, where **nothing but sand-dunes are visible all around the horizon. These sand-dunes change or shift from place to place with strong winds which carry the sand. Hence, there can be no demarcation in this vast expanse of desert, as foot-marks or paths are immediately covered by the blowing sand.**

People travel over these sign-less deserts in caravans with the help of 'Guides' or by their own inherent instincts. During the day the sandy expanse is heated by the scorching sun, making it a veritable vast oven.

If one is lost in these desolate deserts, he suffers from the agonies of the scorching sun, and would die of thirst and hunger. These deserts are so barren, desolate with scorching heat, that no life can exist there.

These 'Deserts' and 'Oasis' belong to "the earthly physical plane. They are symbolic of the inner Deserts and Oasis on the subtle planes of our consciousness. Both are Blessings of God for His children at different planes. The 'Physical Oasis' are needed to save human beings from the miseries of hot, sandy deserts, and are only a transient relief and refuge. On the other hand, the 'Spiritual Oasis' are the Effulgence and Grace of Divinity, pervading and engulfing the consciousness of Awakened and Enlightened Souls They are the immanent blessings of God, to save humanity from the dreary, desolate, and burning desert of illusive *'Maya'*.

Human mind is unconsciously and incessantly weaving and shaping his own good or bad world, within and around himself, by his own thoughts and deeds.

Every thought, good or bad, that emanate from the mind, sends subtle vibrations all over the Universe through Electrons, which are registered in the Infinite, Perfect, Universal Computer of Ether.

Thus, billions of thoughts emanating every moment from the minds of the whole universe are being registered and processed by the universal computer. The cycles and wave-lengths of various degrees of subtle vibrations of our thoughts and deeds, good or bad, accumulate and shape the subtle environment of Universal Mind, which reflect in, and condition the world around us. In this subtle mental process, our thoughts and faith have profound influence in :

– directly shaping our character, fate and

destiny,

– indirectly moulding and modifying the subtle environment of the universe,

– re-coiling on the whole humanity, collectively.

In fact, every thought is a dynamic seed, which sprouts in the mind, flourishes in the mental world, and engulfs the entire Universe. These cumulative thoughts change the environment of the entire world, and thereby make our collective social lives happy or miserable. In other words, the environment or circumstances of the world are conditioned by, and dependent on the kind of our thoughts, conceptions, and faith.

'As you think, so you become'.

This world, good or bad, is the outcome of our own individual and collective thinking, and faith.

God created a 'Heaven' on Earth for his children to live in and enjoy it, but we, the 'prodigal sons' have turned it into a 'hell-like' vicious rendezvous, or dry, dreary, desolate, burning desert, with our wrong and depraved thoughts,

These perverted thoughts and mis-conceptions have degenerated our moral values and social life as well. This explains the tense and vicious atmosphere and environment of – selfishness, deceit, injustice, corruption, pride, envy, prejudice, avarice, hatred, aggrandizement, wickedness, sensuality, jealousy, unrest, strife, violence, cruelty, and wars, prevailing all over the world.

These vices have ignited various kinds of: desires, greed, lust, anger, attachment, and ego in our consciousness.

In our incessant efforts to satisfy and fulfill these fleeting egoistic, and sensual desires, we are unconsciously adding more 'fuel' to our self-ignited 'bon-fires' within, which makes our lives dry, dreary, unhappy, miserable, desolate and hellish.

We have developed and projected our tastes, fancies, desires, luxuries to the extreme degree of refinement.

These refined tastes and desires have become an obsession with us, and we have practically become slaves of the 'Ghost' of unending desires and ambitions.

When we try to fuffill one desire, more desires crop up,

Most of our attention, energy, time and money is spent or wasted in the pursuit of these unnecessary, harmful, ever-increasing, unending baser desires.

Consequently, no time or energy is left for us to pay any attention to sublimer aspects of life!

These desires drive us to extreme and desperate means for their fulfilment where we lose all sense of morality. ethics, logic, reasoning, or discrimination. between : good or bad, fair or unfair, virtue or vice, just or unjust, legal or illegal.

With such corrupt and polluted mentality, we are involved in all sorts of problems, controversies, quarrels, violence, enmity, which enhance our: restlessness, miseries, unhappiness, frustration to make our lives a veritable dry, dreary, barren, desolate, burning, agonizing 'desert' or hell.

2

God created such a joyful and blissful 'heaven' on Earth for his Angelic Children, but we, human 'prodigal Sons' have turned

away from, and denied our Divine Father, the God, and have come under the magical spell of illusive 'Maya'.

We have therefore, turned this celestial 'Heaven' on Earth, into a veritable dry, dreary, desolate, vicious, burning 'Desert', devoid of noble divine virtues of kindness, compassion, peace, faith, devotion, love, joy, and bliss.

Consequently, it is no wonder that we suffer from: unhappiness, worries, frustration, miseries, agonies of our own making !

Our lop-sided materialistic research and achievements have overshadowed and obscured the primal, original, and true 'Science of the Soul'.

We have developed and projected our intelligence to the extreme horizons of the cosmos, but have consciously or unconsciously ignored and denied our 'Father'—the God and His Divinity.

In other words, we are so charmed, absorbed, and lost in the 'Science of the Cosmos', that we have no inclination, aptitude or time to study the sublime 'Science of the Soul'.

The net result of our lop-sided materialistic development has been: mistrust, fear, hatred, unrest, strife, aggression, violence, cruelty, wars, devastation, miseries prevailing all over the universe.

Even so, at the moment, unrest, violence, hostilities and wars are going on in Iran, Iraq, Lebanon, Afghanistan, South Africa, Kampuchea, Central America and so many other places.

This means that our advancement into the 'Science of the Cosmos', has been achieved at the cost of the 'Science of the Soul'.

Consequently, we are absorbed and lost in materialistic pursuits of the cosmos, entirely forgetting or ignoring the Original, True, Blissful, Spiritual aspect of life.

This materialistic involvement has transmuted our consciousness into dry, desolate and burning 'deserts', and is the basic cause of all our unhappiness, miseries and agonies.

We have lost faith in the Creator, the God. This 'faithlessness' or superfluous belief in Divinity, has degenerated and transformed 'humanity' into 'prodigal sons,' and veritable slaves of the illusive 'Maya'.

This illusion of 'Maya' brings with it a trail of baser instincts of: ego, selfishness, lust, deceit, prejudice, envy, hatred, jealousy, anger, indignation

and what not, to make our lives so:

degenerated,unhappy, frustrated, vicious, miserable, dry, dreary, and desolate.

Without this faith in Divinity, 'humanity" is amenable to the baneful influence of 'Maya', and be seduced by its be-witching charm. Gradually, under the magical spell of the illusive 'Maya', we fail to understand, grasp, believe in the Authority of Divine Will, and unconsciously deprive ourselves of the benevolent and compassionate inflow of Divine Joy, Bliss, Love and Grace into our consciousness.

Thus we become : arrogant, proud, profane, aggressive, selfish, malicious, and corrupt.

Consequently, we human beings, individually and collectively, create conditions and enviornments around

ourselves, full of: misunderstandings, misconceptions, fear, doubts, intolerance, hypocrisy, prejudice, jealousy, anger, indignation, malice, strife, enmity, revenge and what not!

These negative depraved human instincts proliferate and spread all over the universe, making it a veritable 'hell'.

These invisible vicious instincts or 'fires' of different hues, and in various intensities, are innate in every sub-conscious mind.

These latent vicious 'fires' go on smouldering within us, and are easily ignited at the slightest exciting cause, and erupt like a volcano, causing terrible devastation within and around us, resulting in untold sufferings, miseries and their after-effects.

If we are ignorant or careless and complacent about our physical diseases, they become chronic and incurable.

Similarly, we are so ignorant or unconscious of our vicious 'fires' of baser instincts, that we just ignore or forget them to our own detriment.

Consequently, these baser instincts permeate deeper and deeper into our consciousness, and become incurable. They are even carried forward to our subsequent lives!

It is ironical that though man has advanced into the extreme horizons of science of the cosmos, he has failed to dive deep enough into his own consciousness, to search, understand, and identify the root cause of all human ills and miseries.

Man has been so absorbed and lost in the research of cosmic science that he has no time or inclination for deeper fundamental, innate 'Science of the Soul'.

The irony of all this human tragedy is that, 'Man' is supposed to have been made in the 'Image of God', and is believed to be the 'King' of all creation.

And it is all the more painful and pitiable that 'Man, the 'King of Creatures' should fall prey to the illusion of Maya, inspite of:

1. all modern intellectual and scientific achievements,

2. boastful modern civilization,

3. profession and practice of various religions,

4. profusion of moral, ethical, and religious knowledge and philosophies,

5. pious efforts of numerous social and moral institutions and august bodies like UNO, UNESCO.

Therefore, with all his scientific achievements and modern civilization, man has failed to diagnose ills of his own sub-conscious mind.

It seems so strange that although these 'fires' of vicious instincts pervade the whole universe, yet, NONE of us is prepared to admit it!

We have become so used to these 'fires' that we take them 'by the way', as part of our life.

We have been warned about these vicious 'fires' by all Prophets, Sages and Saints throughout the ages.

Though we superficially profess to be followers of a Prophet, but in reality we are all faithful 'slaves' of these vicious instincts, and have been suffering the resultant agonies and miseries of the desolate, burning 'deserts' of Maya, life after life.

Thousand Lives of Reincarnating Minds

Harbans Lal, Ph.D.; D.Litt (Hons)

What is Defined as Reincarnation?

Sikh theology differs in defining reincarnation. The ideas of reincarnation are many and as old as human civilization. Their descriptions are found from the last centuries of the 1st millennium BCE. However, these ideas remain as ideas only; they never reached any logical or precise description.

The descriptions of reincarnation differed from one faith tradition to the other. The most popular ones describe reincarnation as the repeated rebirth of the souls into successive human or animal bodies until the spiritual liberation attained through ethical living or a variety of meditative, yogic, or other religious practices. It may even be the verdict of a prophet on the day of judgment.

Logic Behind Reincarnation

At the outset, the present descriptions of reincarnation defy modern logic, and most religious leaders shrewdly shy away from offering any reasonable explanation. Vedic traditions consider the release from the cycle of rebirths as the ultimate spiritual goal and call the liberation by terms such as moksha, nirvana, mukti, and kaivalya. Abrahamic theology suggests that the entities that die wait in hell or heaven until the new life becomes available and granted.

Here, I wish to put together the view expressed by the authors of the *Guru Granth*, the sacred scripture presently in the custodianship of the *Sikhs*.

Who Goes Through Reincarnations?

Siddhas, the scholars of the ancient Hindu religions asked Guru Nanak about reincarnation as one of their questions during the interfaith dialogue Guru Nanak had initiated with them. The Guru's reply is archived in the following verses of the *Guru Granth* (SGGS) on page 939. Siddhas asked:

ਕਵਣੁ ਸੁ ਆਵੈ ਕਵਣੁ ਸੁ ਜਾਇ॥

Who comes and who goes into life cycles?

Guru Nanak responded,

ਮਨਮੁਖਿ ਬਿਨਸੈ ਆਵੈ ਜਾਇ॥

"Manmukh"- (mind-orientations) die and the same are reborn.

Then what is "*Manmukh*"?

Manmukh, Memes, and Mind Animals

Manmukh here means the directions a human mind or man engraves on the human behavior. Thus, it is man that dictates the human actions. Human beings take those directions and express them in the daily lives which are the perpetually changing roles. The regular human lives that are ever changing or transforming thus may be looked upon as transmigrating. The changes in the thinking and human behaviors under such perpetually evolving directions are then the reincarnations of mind.

Since human m'n is a cluster of entities that are subject to reincarnations, it is similarly dictating many roles human beings play during their lifespan. Many of them are animal-like when humans are acting out as animals. Thus, there are reincarnations of human life into animal lives.

The entities that feed into m'n are a bunch of memons that are continuously

formatting the human mind. Each memon is a cluster of memes. A meme, in turn, is an element of a culture or a system of human behaviors that may pass from one individual to another by non genetic means. Mostly, they are sensory inputs originating from a wide range of complex phenomena in the human environment - language, art, scientific thinking, political behavior, advertisement blasts, productive or destructive work, religion, philosophical discourse, even history itself. They are imitations or bombardments of sensory data continuously originating in the cultural environment of a person and, in turn, continuously forming memons that become the precursors of m'n or mind of the recipient. The instructions from m'n become the architect of our intellectual faculties. The mental faculties similarly impacted work their way into our consciousness to render it *manmukh*.

What is born and what dies, according to Guru Nanak's response to the question from Siddhas is the *manmukh*. *Manmukh* minds go through unending reincarnations according to the Sikh theology detailed in the *Guru Granth*.

M'N in Darkness Creates Endless Lives

A verse from the *Guru Granth* is a good illustration of what is said above.

ਅੰਧੁਲੈ ਨਾਮੁ ਵਿਸਾਰਿਆ ਮਨਮੁਖਿ ਅੰਧ ਗੁਬਾਰੁ ॥
ਆਵਣੁ ਜਾਣੁ ਨ ਚੁਕਈ ਮਰਿ ਜਨਮੈ ਹੋਇ ਖੁਆਰੁ ॥
ਅੰਗ - 19

The blind forgot the Creator and became mind oriented, *manmukh,* to dwell in utter darkness. Then, *Manmukh* experiences continual reincarnations, i.e. continued coming and going that do not end; through death and rebirth, one is wasting away.

Here, we may realize that the *manmukh* intellect is often deceitful. It makes us feel good when we do things that it approves. It primes us for actions that fall within the slavery of its precepts. It blurs the boundaries between pleasure and illusion. We begin to interpret our brain's chemical impulses resulting from the dictates of secular cultures as actual sources of pleasures and pains. Our bodies become servants to their whims, thus acting like numerous varieties of animals. The "animals" thus born in one's mind are subject to various transmigrations or reincarnations.

Many Illustrations of Reincarnations

The Sikh scriptures provide many illustrations of the above-described transmigrations or reincarnations of the human mind. Any person may experience them within a human lifespan. The *Guru Granth* even spells out some example of animal-like rebirths suffered by those who are devoid of Guru given mantra of the right path.

ਗੁਰ ਮੰਤ੍ਰ ਹੀਣਸ ਜੋ ਪ੍ਰਾਣੀ ਦ੍ਰਿਗੰਤ ਜਨਮ ਭ੍ਰਸਟਣਹ ॥
ਕੂਕਰਹ ਸੂਕਰਹ ਗਰਧਬਹ ਕਾਕਹ ਸਰਪਨਹ ਤੁਲਿ ਖਲਹ ॥ ਅੰਗ - 1356

Those mortals who are devoid of Guru's teachings live cursed and contaminated lives. Their life is often that of a dog, a pig, a jackass, a crow, and a snake.

The *Guru Granth* says that excessive desires also lead to similar reincarnations of mind that leads to life cycles like those in the hell.

ਹੇ ਕਾਮੰ ਨਰਕ ਬਿਸ੍ਰਾਮੰ ਬਹੁ ਜੋਨੀ ਬ੍ਰਮਾਵਣਹ ॥
ਅੰਗ - 1358

O excessive desires, you lead the mortals to wander in reincarnations of countless species, thereby, driving them to live in the hell.

Similarly, according to another verse, narcissist's mind (*Manmukh*) is said to lead the human beings to the cycles of reincarnations.

ਹਉਮੈ ਵਿਚਿ ਜਗੁ ਬਿਨਸਦਾ ਮਰਿ ਜੰਮੈ ਆਵੈ ਜਾਇ॥ ਅੰਗ - 33

The humanity is dying under the influence of narcissism and continually rotating in many reincarnations of coming and going (births and deaths).

ਹਉਮੈ ਮਾਇਆ ਰੋਗਿ ਬਿਆਪੇ ਮਰਿ ਜਨਮਹਿ ਦੁਖੁ ਹੋਈ ਰਾਮ॥ ਅੰਗ - 768

Those who are afflicted with the diseases of narcissism and live under the illusion of Maya, they all suffer from the pains of deaths and rebirths (reincarnations).

Another verse,

ਹਉਮੈ ਵਿਚਿ ਜਗੁ ਬਿਨਸਦਾ ਮਰਿ ਜੰਮੈ ਆਵੈ ਜਾਇ॥ ਅੰਗ - 33

The world Engrossed in narcissism, perishes. It dies and is reborn; it continues coming and going in reincarnation.

Likewise, those attached to the love of duality suffer unpleasant reincarnations.

ਧ੍ਰਿਗੁ ਖਾਣਾ ਧ੍ਰਿਗੁ ਪੈਨਣਾ ਜਿਨਾ ਦੂਜੈ ਭਾਇ ਪਿਆਰੁ॥ ਬਿਸਟਾ ਕੇ ਕੀੜੇ ਬਿਸਟਾ ਰਾਤੇ ਮਰਿ ਜੰਮਹਿ ਹੋਹਿ ਖੁਆਰੁ॥ ਅੰਗ - 1347

Cursed is the food, and cursed are the clothes, of those who are attached to the love of duality. They are like maggots living in manure and sinking into a slurry of manure. There only they die and take births. Thus, they are wasted away to ruin.

Salvation from Cycles of Reincarnation

Should people of this world not learn the right path of successful living, and not realize the right way, they will continue to exist in the human bodies, but, in reality, they will be as dead human. In fact, they will be condemned to thousands of lives of reincarnations that will doom them to wrecks.

ਅੰਤਰਿ ਗਿਆਨੁ ਨ ਆਇਓ ਮਿਰਤਕੁ ਹੈ ਸੰਸਾਰਿ॥ ਲਖ ਚਉਰਾਸਿਹ ਫੇਰੁ ਪਇਆ ਮਰਿ ਜੰਮੈ ਹੋਇ ਖੁਆਰੁ॥ ਅੰਗ - 88

Those who do not acquire spiritual wisdom into their hearts; they are like dead bodies in the world. They go through the cycle of 8.4 million (meaning countless; reincarnations which devastate them through the punishments caused by deaths and rebirths.

Freedom from Reincarnation is Goal

According to the path of *Sikhi*, freedom from reincarnations is the Goal of Human Life. But how? The *Guru Granth* suggest a few ways.

First, one must come to realize that just by going through reincarnations one never reaches any permanent abode of peace. However, such a life may be achieved through the path shown by Guru, the one with the ability to lighten up the trail hitherto covered by darkness.

*ਅਨਿਕ ਜਨਮ ਭ੍ਰਮਿ ਥਿਤਿ ਨਹੀ ਪਾਈ॥
ਕਰਉ ਸੇਵਾ ਗੁਰ ਲਾਗਉ ਚਰਨ ਗੋਵਿੰਦ ਜੀ ਕਾ ਮਾਰਗੁ ਦੇਹੁ ਜੀ ਬਤਾਈ॥ ਅੰਗ - 686*

I failed to achieve a permanent abode of peace just by going through countless reincarnations. Now I serve the causes of the Guru and seek Guru's teachings so that Guru may teach me the way to the salvation.

According to *Gurmat* (path of the Guru or Divine Wisdom), first, one may seek the company of those who have achieved the salvation from the reincarnations.

*ਸਫਲ ਸਫਲ ਭਈ ਸਫਲ ਜਾਤ੍ਰਾ॥
ਆਵਣ ਜਾਣ ਰਹੇ ਮਿਲੇ ਸਾਧਾ॥ ਅੰਗ - 686*

The journey of this life is successful only when reincarnations of human mind end, for which one may seek the company of those who have achieved success in conquering their m'n (mind of *Manmukh*).

ਨਾਨਕ ਸਤਿਗੁਰਿ ਭੇਟਿਐ ਪੂਰੀ ਹੋਵੈ ਜੁਗਤਿ॥ ਹਸੰਦਿਆ ਖੇਲੰਦਿਆ ਪੈਨੰਦਿਆ ਖਾਵੰਦਿਆ ਵਿਚੇ ਹੋਵੈ ਮੁਕਤਿ॥ ਅੰਗ - 522

(Contd. on P. 77)

The Message of Guru Granth Sahib

S. Kharak Singh
(Institute of Sikh Studies)

To sum up the message of Guru Granth Sahib is an impossible task. It is a unique religious scripture, which embodies not only the revolutionary thought process initiated by Guru Nanak and followed by his successor Gurus, but also the wisdom bequeathed by outstanding Indian sages of the previous five centuries, coming from different schools of spiritual thought. The Gurbani, as the divine message in the Granth, is called, deals with every conceivable aspect of human life, temporal as well as spiritual, and envisages a comprehensive whole-life religious system called Sikhism. It is the youngest among scriptures of the major world religions. Coupled with the facts that it is authenticated by the Guru himself and that it enjoys the status of Guru Eternal of the Sikhs, it becomes a unique scripture.

Guru Arjun Dev who compiled this great scripture, himself gave an indication as to its contents in the epilogue as follows:

> *"In this salver are lying three viands - truth, content and contemplation. Also lying in it is the Lord's ambrosial Name, sustenance of all existence. Whoever, partakes of it, consumes it, saved shall be. This substance no way can be discarded — ever in heart cherish it. The world, darkness enveloped, by touch of the Master's feet, is crossed, Thus, sayeth Nanak, all that is visible, is seen as manifestation of the Supreme Being."*

The Guru compares the Granth with a salver containing spiritual foods, carrying viands of Sat (Truth), Santokh (contentment) and Vichar (contemplation), besides Naam (the immanent Lord). These constitute the major components of the Gurus' message, and are, therefore, briefly discussed below :

Truth

Sat is a Sanskrit word, which literally means a reality or something that exists. According to Guru Granth Sahib, the ultimate reality is God Himself. He was in Existence before and at the beginning; He was, when the yugas started; He is now; and ever He shall be.

According to earlier religious traditions in India, the world was considered mithya or maya, which in fact did not exist, and all we see is an illusion. Guru Granth Sahib rejects this view, and says that the universe is God's creation, and is, therefore, real. "It is the abode of the True Lord. He dwells in it", and that it has been created as a place to practise dharma in the midst of air, water, fire and nether regions. He, however, makes a distinction between God and the universe. While the former is the Creator, eternal without beginning or end, the latter is His creation which is transient, ever changing, becoming, and subject to beginning and end in time under His Will.

According to Guru Granth Sahib, it is not enough to know or understand Truth. It must be practised in life, as stressed in the following verses :

> *"Realization of Truth is higher than all else —*
> *higher still is truthful living."*

The Guru elaborates truthful living :

– "Ever do they see and speak truth: Thus are their body and mind rendered holy. Their teaching, their preaching is truth; Through truth comes to them noble repute. Those disregarding truth depart this life wailing and crying." – "He, who is true here, is true hereafter too; The true mind is imbued with the True word; He, who serves the Truth, practises the (Lord's) Truth, And earns he nothing but the Truth, Sacrifice, O Sacrifice am I unto those, Who enshrine the True Name in their hearts, And serve the True One and merge in Him, And sing the praises of the True One." – "True should be known such a one as in heart bears truth — His impurity of falsehood cast off, His person should be washed clean. True should be known such a one as to truth is devoted in love. Should a person on listening to the Name Divine feels joyful, The Door of liberation he attains. True should be known such a one as knows the device of union of the self with the Absolute. Preparing soil of his body, the Creator in it should he sow. True should be known such a one as truthful instruction receives; Should be compassionate to creation and something in charity give away. True should be known such a one as at the bathing-spot of the self takes abode; Seeks the holy Preceptor's guidance and takes his fixed abode there. Truth is the universal remedy, washing off evils. Nanak lays his supplication before such as to Truth hold on." – "Speak ever what is truthful and pure; shun what is false Let the disciple tread the path shown by the Master." – "To bear Truth in heart is purest doing. All else is fraud, whose worship ignominy entails."

The Guru adds that truth must be spoken, when the occasion demands. One should not shirk this responsibility. Falsehood is decried and compared to eating a carrion.

Contentment

Santokh means a state of being satisfied with what God in His grace, gives us. It is the opposite of greed or covetousness, which is decried in the Guru Granth Sahib as one of the five major vices that afflict humans.

Lured by temptation, people run after wealth and objects of worldly pleasure. These, however, do not quench one's thirst. The endless struggle for acquisition of more and more wealth continues. In the following verses the Guru explains the futility of these pursuits and the need for santokh for ultimate peace of mind:

"Maya of many hues in numerous aspects have I seen; I have seen much wisdom too by pen on paper recorded. Status of chief, king and lord too have I beheld; None of these to the mind brings fulfillment. Holy devotees ! tell me of that joy, Whereby may desire be annulled and the mind's hunger be satisfied. Riding steeds fast as wind and elephants; Fragrance of attar and sandalwood; couching with beauteous females; Musical and dramatic performance in theatre — In none of these does the mind find satisfaction. In splendid assemblies to sit on thrones with carpets spread; Enjoying gardens with all manner of fruits laden; The spectacle of chase by kings; None of these to the mind brings joy: All false shows appear. The holy in their grace have declared this truth, Wherein lie all joy and bliss: In holy company chant Divine praise! Saith Nanak : This by great good fortune is attained. Happy is one having such Divine wealth. By Divine grace is found union with the holy."

There are numerous references to santokh in Guru Granth Sahib. We may reproduce one of these to conclude that craving will not end without santokh:

Man earning thousands, in pursuit after millions goes — By accumulation of wealth not satisfied, runs after these. Should man

enjoy innumerable poison-delights, He still is unsatisfied, and after these dies hankering. In contentment alone lies satisfaction — All other actions are worthless as resolves and actions in dream. By devotion to the Name come all joys — This state by rare ones by great good fortune is attained. The Lord is the sole Doer of all. Saith Nanak : Ever the Lord's Name thou utter.

In Japu ji Guru Nanak explains that the traditional bull believed to support the world, is, in fact, dharma (the practice of righteous deeds), which leads to santokh.16

Contemplation

The term has been variously translated by scholars as 'wisdom', 'contemplation', or 'meditation'. It also means thought or view. In any case, it involves the use of intellect and concentration. The Guru gives his own views on practically every subject dealing with life. For example, in the Japu ji he gives a beautiful description of Nature. He mentions all the good as well as bad things, and concludes, sharing his wisdom:

"How may I contemplate and express His might, I that am unworthy even once to be made a sacrifice to Him! Whatever Thou willst is good, Thou Formless one! Immutable, ever-perfect art Thou."

The Guru, however, does not favour blind faith. He advocates use of brain or intellectual faculties, to see the merit of one's actions and to discriminate between good and evil :

"By wisdom is the Lord served, by wisdom is attained honour, By wisdom are books interpreted, By wisdom is dispensed charity, Saith Nanak : There is one sole path to God. All else is Satan's prompting."

He warns, however, that intellect should not be wasted in needless controversies:

"Those without truth and modesty in the hereafter honoured shall not be. To indulge in disputation is to lose sense — Such is not the way of wisdom." "...In the remaining seven quarters must one love truth, practise goodness, And seek company of the enlightened. Therein is discriminated good from evil; The false are found losers; The spurious are cast off; The genuine given approbation. Saith Nanak : Suffering and happiness from the Lord comes;
All argument is of no avail."

The Guru commends learning, since "it induces in the mind service of mankind." The Guru decries ignorance. He says :

"If the night be black, what is white shall so remain; In the blazing light of the day, the black remains black; Those blind of sight, ignorant, without enlightenment, Who see not, shall nowise be honoured in the Court Divine."

The Guru adds that learning should be used for a noble purpose, and condemns its use for betraying one's own people :

"Deer, falcons and state officials are given training, That in snares spread around, Their fellows they get entangled—In the hereafter shall they find no rest. Such are truly learned, well-taught and wise, As live in accordance with holy piety. Only that which has roots to grow from, Can cast a shade from above."

Naam

"Concept of Naam is fundamental to the gospel of Guru Granth Sahib and the entire structure of its theology. In fact, Sikhism has often been called Naam Maarga, or the way of Naam. The word Naam, as used in Guru Granth Sahib, has a distinct and more significant meaning than that of mere name. Often it has been used as synonymous with God. Naam is unfathomable. According to Gurbani, "It sustains all regions and universes, all thought, knowledge and consciousness, all skies and stars, all forces and substances, all continents and spheres. Naam emancipates those who accept it in

their heart. He, on whom is His Grace, is yoked to Naam, and he reaches the highest state of development. Naam permeates the entire creation. There is no place or space where Naam is not."

In Asa di Vaar , the Guru says that God created Himself (nirgun or formless) and himself created Naam (the Sargun sarup). Later He created the universe, and permeated it in immanent form. For practical purposes, we may, therefore, assume Naam as God Himself, as Divine Power in the immanent form.

All Sikhs are seekers of Naam which is regarded as the greatest gift. They pray :

"Lord, to seek other than You is the greatest of afflictions. Confer on me the Naam, the bringer of content, Wherewith the mind's thirst may go."

It is necessary to understand what the gift of Naam means. It certainly does not mean merger with God. For, God is the Creator, and man is His creation. So gift of Naam means link with God or His Will which is also synonymous with Naam. He prays :

"O that someone to the Lord were to unite me! Of such a one shall I grasp the feet, Utter him fine words, Dedicate life to him."

The purpose is to identify His Will and to become an agent or instrument in the execution of the benevolent Will of God. That is the goal of life.

Conclusion

The message of Guru Granth Sahib is comprehensive. Guru Arjun Dev has, however, compared it with a salver of spiritual food which contains, inter alia, three viands, viz., Truth, Contentment and Wisdom, besides Naam. God is the ultimate Truth.

(... continued from P. 62)

self-realization and becomes God conscious. His mind throbs with love for the whole created universe and all mankind appear to him as brothers and sisters in spirit, without any distinction of caste, creed, race or colour.

In the words of Guru Arjan he feels

"Ever since I have found the company of Saints and followed their directions, all thoughts of mine and thine have vanished. No one is my enemy and none a stranger. I feel every one as my spiritual kith and kin. Whatever God does is for the best. I always keep myself resigned to His will. This balanced state of mind I have found by following the advice of God-conscious persons. I realize the eternal Divine pervading through the whole created Universe. It fills the heart of Nanak to see Him thus manifested in his creatures.

ਬਿਸਰਿ ਗਈ ਸਭ ਤਾਤਿ ਪਰਾਈ ॥
ਜਬ ਤੇ ਸਾਧ ਸੰਗਤਿ ਮੋਹਿ ਪਾਈ ॥1 ॥ਰਹਾਉ ॥
ਨਾ ਕੋ ਬੈਰੀ ਨਹੀ ਬਿਗਾਨਾ ਸਗਲ ਸੰਗਿ ਹਮ ਕਉ ਬਨਿ ਆਈ ॥1 ॥
ਜੋ ਪ੍ਰਭ ਕੀਨੋ ਸੋ ਭਲ ਮਾਨਿਓ ਏਹੁ ਸੁਮਤਿ ਸਾਧੂ ਤੇ ਪਾਈ ॥2 ॥
ਸਭ ਮਹਿ ਰਵਿ ਰਹਿਆ ਪ੍ਰਭੁ ਏਕੈ ਪੇਖਿ ਪੇਖਿ ਨਾਨਕ ਬਿਗਸਾਈ ॥3 ॥ *ਅੰਗ - 1299*

It is this realization from within that can be permanent basis of World Peace, for which we have assembled here, in this our Eighth World Congress of Religions for the establishment of World Peace. So let us gird up our loins and without leaving our independent rites and rituals, bring all our co- religionists and the general public to daily meditation on the Divine Name, and prayer, and singing hymns in the Lord's praise.

The Discourse of Sant Ji - Part 3

Sant Waryam Singh Ji

(Continued from P. 77, issue Sep., 2019)

3. Seekers - Very few people belong to this category; one among thousands. Who reflect and ponder as to what was their condition before attaining this life and what would be the modes of their existence after the end of this life. Such persons in their life shun evils such as selfishness and sin. By listening to the *Bani* of Immortal Divines they develop firm faith in this maxim :

For several births thou became a worm and a moth.
In several births thou wert an elephant, a fish and a deer.
In several births thou became a bird and a snake.
In several births thou wert yoked as a horse and an ox.
Meet the Lord of the Universe. This is the opportunity to meet Him.
After a long time this human body is fashioned.

ਕਈ ਜਨਮ ਭਏ ਕੀਟ ਪਤੰਗਾ।।
ਕਈ ਜਨਮ ਗਜ ਮੀਨ ਕੁਰੰਗਾ।।
ਕਈ ਜਨਮ ਪੰਖੀ ਸਰਪ ਹੋਇਓ।।
ਕਈ ਜਨਮ ਹੈਵਰ ਬ੍ਰਿਖ ਜੋਇਓ।।
ਮਿਲੁ ਜਗਦੀਸ ਮਿਲਨ ਕੀ ਬਰੀਆ।।
ਚਿਰੰਕਾਲ ਇਹ ਦੇਹ ਸੰਜਰੀਆ।। ਅੰਗ - 176

And they have complete faith that the supreme purpose of this invaluable body is to realise Him and to be united with the immanent *Waheguru* inside them.

The human body has come to thy hand.
This is thy chance to meet the Lord of the world.
Other works are of no avail to thee.
Joining the society of saints, contemplate over the Name alone.
Make effort for crossing the dreadful world-ocean.
In the love of worldliness, the human life is passing in vain.

ਭਈ ਪਰਾਪਤਿ ਮਾਨੁਖ ਦੇਹੁਰੀਆ।।
ਗੋਬਿੰਦ ਮਿਲਣ ਕੀ ਇਹ ਤੇਰੀ ਬਰੀਆ।।
ਅਵਰਿ ਕਾਜ ਤੇਰੈ ਕਿਤੈ ਨ ਕਾਮ।।
ਮਿਲੁ ਸਾਧਸੰਗਤਿ ਭਜੁ ਕੇਵਲ ਨਾਮ।।
ਸਰੰਜਾਮਿ ਲਾਗੁ ਭਵਜਲ ਤਰਨ ਕੈ।।
ਜਨਮੁ ਬ੍ਰਿਥਾ ਜਾਤ ਰੰਗਿ ਮਾਇਆ ਕੈ।।
ਅੰਗ - 12

Within them is awakened the desire to establish relationship with those who can cope with the problems they encounter in their quest, and who can guide them to their destined goal, namely to reach the celestial sphere of realm of God. For the chronic lepretic ailment of I'ness (The ego) the noble persons could suggest a cure and prescribe a medicine, which may make the seeker aware of the path to self realisation, and help him attain the real state of Supreme Bliss by overcoming his countless miseries.

In order to realise their duty as human beings; and impulse does arise in their hearts that instead of indulging in personal pleasures, they should help the miserable, the suffering and the needy. They have a relationship of love with the prophets, seers, Gurus, saints, sadhus and realised souls. They go to their congregations, with great devotion and do service there with heart and soul. They put in all possible efforts for the fulfillment of their purpose of life. Such persons are called the seekers. There are grades even among them; good, indifferent

and bad. But through the *satsangs* (interaction with the holy) they rise to the rank of the top seekers. Persons of this category are rare, though one among the thousands, they always at all times pray for the good of the world.

Nanak, God's Name is ever exalting,
And may all flourish by Thy grace, O Lord.
ਨਾਨਕ ਨਾਮ ਚੜ੍ਹਦੀ ਕਲਾ ਤੇਰੇ ਭਾਣੇ ਸਰਬਤ ਦਾ ਭਲਾ ॥

Such persons wake up at the ambrosial hour of dawn. At that time, they read the *Bani* and with diligence practice the meditative routine. Thus they lead a life of love service and cooperation. They themselves enjoy happiness and they dispense joys among those, who are in contact with them. Their inward prayer, 'O God (*Waheguru*), send to us and let us see those who are the beloveds of God, who could remove all darkness of ignorance within us, and whose meeting would signal to us meeting with you in our heart, so that we break off our attachment to the world, to establish all our love with you. Such persons always put in their best efforts for attaining the Name. They are always eager for meeting the saints. They keep themselves aloof from the company of the non-believers, of the self-willed, self centred and those who indulge in sensual worldly pleasures.

The Fourth Category consists of those godmen, who are at all times one with God and who show to the seekers the path to Godhead and teach them how to be united with Him. These are called *saints* and *sadhus*, *Faquir*, *Arifs*, *Brahamgianis* and *Gurmukhs*. They are knowers and possessors of the knowledge of God; they are also called the men of the Guru. In short, their consciousness is at all times absorbed in God. Every moment they are engaged in thinking about God, talking about God, propounding the knowledge about God. Their mind sees God everywhere, in the both in the visible and the unseen world. To them, the world is the visible form of God, they have direct sight of God. Their ignorance is completely eliminated, so there is no scope for I-ness (personal vanity). They accept whatever happens as the Will of God. As Guru Maharaj says :

The vision of saints perceives Braham everywhere
And their heart is imbued all with faith.
Ever the holy man hears good words.
He merges into the All-pervading Lord.
This is the way of life of him who knows the Lord.
True are all the words which the saint utters.
Whatever happens, he takes that for the best.
He deems that the Lord is the doer of deeds.
He abides within and He is also found without.
Nanak, on beholding His sight, every one is charmed.
ਸੰਤ ਜਨਾ ਕਾ ਪੇਖਨੁ ਸਭੁ ਬ੍ਰਹਮ॥
ਸੰਤ ਜਨਾ ਕੈ ਹਿਰਦੈ ਸਭਿ ਧਰਮ॥
ਸੰਤ ਜਨਾ ਸੁਨਹਿ ਸੁਭ ਬਚਨ॥
ਸਰਬ ਬਿਆਪੀ ਰਾਮ ਸੰਗਿ ਰਚਨ॥
ਜਿਨਿ ਜਾਤਾ ਤਿਸ ਕੀ ਇਹ ਰਹਤ॥
ਸਤਿ ਬਚਨ ਸਾਧੂ ਸਭਿ ਕਹਤ॥
ਜੋ ਜੋ ਹੋਇ ਸੋਈ ਸੁਖੁ ਮਾਨੈ॥
ਕਰਨ ਕਰਾਵਨਹਾਰੁ ਪ੍ਰਭੁ ਜਾਨੈ॥
ਅੰਤਰਿ ਬਸੇ ਬਾਹਰਿ ਭੀ ਓਹੀ॥
ਨਾਨਕ ਦਰਸਨੁ ਦੇਖਿ ਸਭ ਮੋਹੀ।ਅੰਗ - 294

There is normally no violence in the nature of the saint; neither the violence of the body, nor of speech, nor with mind nor with intellect, nor with the acquired power. A saint does no violence with word, mind or deed. He never tells a lie nor indulges in any kind of stealing. Stealing is of many kinds, like stealing someone's ideas, or someone's poetry, or of his writings

(plagiarism); theft by eyes is to look at beauty, theft by ears is to hear someone's secret, theft by hands is the stealing of someone's money. He is given to none of these forms of theft. The greatest of all thieves is he who does not do *jap* (recitation) of God's Nam.

He, who utters not the Lord's Name, is like a thief, abiding in the fortress (body) of five desires.
ਤੇ ਤਸਕਰ ਜੋ ਨਾਮੁ ਨ ਲੇਵਹਿ ਵਾਸਹਿ ਕੋਟ ਪੰਚਾਸਾ।। ਅੰਗ - 1328

The saints forsake non-truth; they adopt the life of truth. They are self-restrained, having conqured their sense organs.

Whose eyes see not the beauty of others wives.
Who with his ears, hears not slander of anyone.
ਪਰ ਤ੍ਰਿਅ ਰੂਪੁ ਨ ਪੇਖੈ ਨੇਤ੍ਰ।।
ਕਰਨ ਨ ਸੁਨੈ ਕਾਹੂ ਕੀ ਨਿੰਦਾ।। ਅੰਗ - 274

In the mind, they never think of any vice; their minds are stable. To forgive a wrong-doer is the adornment of their self. They take pity on all beings, they render service to others); their words are gentle and soft to the greatest extent. They practise the maxim; eat less and have little sleep. They always keep the atmosphere of purity around them; rendering selfless service is their objective. They do not indulge in vulgarity. That is, they are the embodiment of purity in mind, word and deed. They are completely free from desire. Always with dedication, they lead the misguided persons unto the path of God. Themselves they have firm faith in *Waheguru* and inspire others too about this faith. They are embodiment of selfless service. They are ever ready to do good to the world even by putting themselves into much bother. They are never imposters; they never put on a pose, nor do they take part in any bogus activity. They totally forsake their personal importance (ego). They never indulge in any sort of fake deed, to promote their own greatness. They behave always in an ethical, noble manner. Humility is the ornament of the saints. They win the hearts of others, by their honeyed words and feelings full of oneness for others. They run the *langar,* the community kitchen and devote all their time in the service of others. Even far the very foolish ignorant persons, who from their high positions with bad gestures hurl wild accusations against the saints, they only express their good will and pray to God to bless even these misguided persons.' Such ways of these great men remain mysterious and beyond our ordinary comprehension. The more we admire their way of life, the more good we do to ourselves, because Waheguru loves the praises of the God-intoxicated persons and relishes any service done to them. They never lose their inner cool, even if evil persons hurl bitter, unsavoury and poisonous words at them. They never forsake their composure.

Kabir, the saint abandons not his saintliness, even though, he meets with millions of impious persons.
Sandal is entwined with serpents, even then it leaves not its coolness.
ਕਬੀਰ ਸੰਤੁ ਨ ਛਾਡੈ ਸੰਤਈ ਜਉ ਕੋਟਿਕ ਮਿਲਹਿ ਅਸੰਤ।।
ਮਲਿਆਗਰੁ ਭੁਯੰਗਮ ਬੇਢਿਓ ਤ ਸੀਤਲਤਾ ਨ ਤਜੰਤ।। ਅੰਗ - 1373

About this subject, there is a fable. Sant Buddhu Ji used to live in the west Punjab near the town of Shahpur. He had taken upon himself the duty of managing the *langar*. This saint was the possessor of all supernatural powers, but never even by mistake did he make a use of these powers. Once a *Yogi* (sadhu) came to him. This man was endowed with the powers to produce wealth, gold etc. by supernatural methods.

He captivated the people by making a show of his supernatural powers. Thus he collected a large following. That beloved sadhu noticed that Sant Buddhu Shah had to spend a lot of money on langar and allied activities. He thought that if I teach to him (Buddhu Shah) the formula for making silver, that would easily take care of all his expenses and then he would become my follower as well. So he took Sant Buddhu Shah aside and said, since you have to incur a lot of expense; I want to give you some help for that. I want to tell you the formula for making silver. You kindly pay a little attention to this matter. To this Buddhu Shah replied, 'Dear one, whatever service of people I am doing it is by the command of God, and it is being done by His humble servant. It is He, who sends the provisions, it is He who also sends the money. I only try to make the proper use of whatever things are sent by God. That money is spent where it is needed most. Otherwise too, Guru Nanak, the King of kings has bestowed on us the invaluable boon of God's Name.

(... to be continued)

(... continued from P. 69)

Says Nanak, meeting the True Guru, one comes to know a Perfect Way. While laughing, playing, dressing and eating, the follower is liberated.

A scholar by the name of Tal paid a visit to Guru Arjan, the compiler-editor of the virtues. *Guru Granth*. When in the company of the Guru, he composed the following verse.

ਸੁ ਕਹੁ ਟਲ ਗੁਰੁ ਸੇਵੀਐ ਅਹਿਨਿਸਿ ਸਹਜਿ ਸੁਭਾਇ॥ ਦਰਸਨਿ ਪਰਸਿਐ ਗੁਰੂ ਕੈ ਜਨਮ ਮਰਣ ਦੁਖੁ ਜਾਇ॥ ਅੰਗ - 1392

So, speaks TAL the poet: serve the Guru, day and night, with intuitive love and affection. Contemplating upon the philosophy of the Guru, the pains of death and rebirth are taken away.

Conclusions

According to *Gurmat* (path of the Guru). The reincarnations apply to the birth and deaths of the human mind, m'n, and not the human body. m'n is described succinctly as a storehouse of the many clusters of memes. Memes are mental storehouses of ideas formed from units of cultural inputs. They are capable of self-replication and cross meme transmission, thus creating the seat of reincarnations.

We erroneously learn to listen to our inner voices to guide our actions. The inner voices come from m'n.

ਮਨ ਕਾ ਕਹਿਆ ਮਨਸਾ ਕਰੈ॥
ਇਹੁ ਮਨੁ ਪੁੰਨੁ ਪਾਪੁ ਉਚਰੈ॥ ਅੰਗ - 832

People do what their human conscience (m'n) commands, thus it is their human conscience that defines sins and virtues.

In conclusion, this paper described reincarnations as various forms of m'n that are continually taking new births. Only the company of those who have conquered the m'n may show the path of ultimate realization and end the pains of reincarnations.

ਸਾਧਸੰਗਿ ਜਪਿ ਨਿਸੰਗ ਜਮਕਾਲੁ ਤਿਸੁ ਨ ਖਾਵਨੋਂ॥ ਮੁਕਤਿ ਜੁਗਤਿ ਅਨਿਕ ਸੂਖ ਹਰਿ ਭਗਤਿ ਲਵੈ ਨ ਲਾਵਨੋਂ॥ ਅੰਗ - 1323

Whoever chants sacred hymns and meditates on *Naam* in the *Saadh Sangat*, the seekers' gatherings, shall undoubtedly escape from consumption by the Messenger of Death.

ਆਤਮ ਮਾਰਗ ਦੀ ਨਵੀਂ ਮੈਂਬਰਸ਼ਿੱਪ ਅਤੇ ਰਿਨੀਊਵਲ ਅਤੇ ਪੁੱਛਗਿਛ

ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਸੰਤ ਬਾਬਾ ਵਰਿਆਮ ਸਿੰਘ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਰਤਵਾੜਾ ਸਾਹਿਬ ਵਾਲਿਆਂ ਦੁਆਰਾ ਲਿਖਤ ਪੁਸਤਕਾਂ, ਗਾਇਨ ਕੀਤੀਆਂ ਸ਼ਬਦ ਗੁਰਬਾਣੀ ਕੀਰਤਨ ਦੀਆਂ ਕੈਸਟਾਂ, CD.'S, VCD.'S, DVD.'S MP3 ਦੇ ਆਪ ਜੀ ਹੇਠ ਲਿਖੇ ਐਡਰੈਸਾਂ ਤੋਂ ਮੰਗਵਾ ਸਕਦੇ ਹੋ ਜੀ।

For all enquiries about 'Atam Marg' viz. renewal, new membership, non-receipt of the magazine etc. and also for procuring audios, videos & CDs; and books authored by Sant Waryam Singh Ji, please contact the following

England (U.K.)

For U.K. renewal of Atam Marg Magazine please forward cheque £ 40.00 payable to A.M.S.S.E.C.T. (U.K.) 9 Elizabeth Road, Walsall, West Midlands WS5 3 PF

Atam Marg Spiritual Scientific Educational Charitable Trust (U.K.)
9 Elizabeth Rd.,
Walsall West Midlands, WS5 - 3PF U. K.

Contact : Mrs. Gurbax Kaur,
Mr. Jagtar Kulair : Tel : 0044-1212002818
Fax : 0044-1212002879
Voicemail : 0044-8701654402
Raj Mobile : 0044-7968734058
Email : info@atammarguk.com

U.S.A.

Vishav Gurmat Roohani Mission Charitable Trust,
Contact : Bhai Amardeep Singh Atwal, 2755, Guildhall Dr., San Jose, Ca - 95132, U.S.A
Phone :- 001-408-263-1844,
vgrmctusa@yahoo.com

S. Baldev Singh Grewal
Fremont, U.S.A - 001-510-249-9456

Canada

Bhai Sarmukh Singh Pannu
Phone - 001-604-433-0408

Bhai Parmjit Singh Sandhu
Cell: 001-250-600-3072

Bhai Tarsem Singh Bains
Cell : 001-604-862-9525, Phone : 001-604-599-5000

IN INDIA
09417214391, 09417214379 09814612900, 9417214378
Email: **atammarg1@yahoo.co.in**

Australia

Bibi Jaspreet Kaur
Cell : 0061-406619858
Email :- jaspreetkaur20@hotmail.com

Foreign Membership

	Annual	Life
U.S.A.	60 US$	600 US$
U.K.	40 £	400 £
EUROPE	50 Euro	500 Euro
AUS.	80 AUD$	800 AUD$
CANADA	80 CAN$	800 CAN$

क्षेत्र सुल्तानपुर लोधी (पंजाब) में ट्रस्ट के वाइस चेयरमैन बाबा करनैल सिंह जी तथा अन्य सेवादार बाढ़ पीड़ितों को मच्छरदानियाँ वितरित करते हुए
नीचे - सन्त बाबा हरपाल सिंह जी श्री आनन्दपुर साहिब के क्षेत्र में बाढ़ के प्रकोप से क्षतिग्रस्त हुए मार्ग को कार-सेवा के माध्यम से ठीक करते हुए

श्री गुरू नानक देव जी के 550वें प्रकाश गुरुपर्व
साहिब श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के गुरुगद्दी दिवस
समस्त शहीदों की पावन स्मृति
श्रीमान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी तथा
सम्माननीया माता रणजीत कौर जी की
पावन स्मृति के उपलक्ष्य में
महान गुरमति रूहानी समागम
30-31 अक्टूबर
1-2-3 नवम्बर
रतवाड़ा साहिब
श्रीमान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी
सम्माननीया माता रणजीत कौर जी
अमृत संचार
1-2 नवम्बर
प्रातः 10.00 बजे
ट्रान्सपोर्ट/सवारी हेतु
सम्पर्क नम्बर
98155-94315
नि:शुल्क मैडिकल शिविर
नि:शुल्क नेत्र आप्रेशन
शिविर 27 से 30 अक्टूबर
चिकित्सा विशेषज्ञों
(स्पेशिलस्ट डाक्टरों)
चिकित्सकीय परीक्षण
तथा नि:शुल्क दवाइयाँ
महापुरुषों द्वारा प्रकाशित
पुस्तकें अर्द्धमूल्य पर
उपलब्ध करवाई जाएँगी
नाम अभ्यास
ब्रह्ममुहुर्त में महापुरुषों द्वारा
बतलाई गई युक्ति के अनुसार
बाबा लखबीर सिंह जी
रतवाड़ा साहिब
प्रार्थक: विश्व गुरमति रूहानी मिशन चैरिटेबल ट्रस्ट, रतवाड़ा साहिब
(न्यू चण्डीगढ़)
फोन : 96461-01996, 98551-32009, 94172-14378, 98889-10777, 98146-12900